गोविन्द शास्त्री

यन्त्र सिद्धि रहस्य

हमारे ज्योतिष सम्बन्धी प्रकाशन :

S-849	भारतीय वास्तुकला	
S-885	लाल किताब प्रथम	
S-886	लाल किताब द्वितीय	
S-464	भृगु संहिता	महर्षि भृगु
S-834	अंग लक्षण और रेखाएं	(कीरो)
S-665	रेखाएं बोलती हैं	(कीरो)
S-548	सम्पूर्ण हस्तरेखा विज्ञान	(कीरो)
S-549	अंक ज्योतिष	(कीरो)
S-666	आपका जन्मदिन	(कीरो)
S-902	योग दर्पण एवं ग्रह नक्षत्र विज्ञान	
S-726	आपके सितारे	(कीरो)
S-568	ज्योतिष और काल निर्णय	डा० नारायण दत्त श्रीमाली
S-329	भारतीय अंक ज्योतिष	
S-506	रत्न ज्योतिष	
S-130	जन्म पत्रिका दर्पण	
S-110	हस्तरेखा विज्ञान पंचांगुली साधना	
S-577	फलित दर्पण	
S-664	नाइस्त्रेदमस की भविष्यवाणियां	
S-615	बृहद हस्तरेखा विज्ञान	सत्यवीर शास्त्री
S-616	बृहद अंक ज्योतिष	सत्यवीर शास्त्री
S-293	शकुन और स्वप्न	गोविन्द शास्त्री
S-235	मंत्र सिद्धि रहस्य	गोविन्द शास्त्री
S-347	यंत्र विज्ञान	गोविन्द शास्त्री
S-337	तंत्र विज्ञान	गोविन्द शास्त्री
S-318	मंत्र विज्ञान	गोविन्द शास्त्री
S-500	भूतबाधा देहरक्षा	गोविन्द शास्त्री
S-412	विवाह और ज्योतिष	गोविन्द शास्त्री
S-610	तंत्र सिद्धि रहस्य	गोविन्द शास्त्री
S-611	यंत्र सिद्धि रहस्य	गोविन्द शास्त्री

यंत्र सिद्धि रहस्य

प्रस्तुति :

गोविन्द शास्त्री

साधना पॉकेट बुक्स

रोशनआरा रोड, दिल्ली-110007

प्रकाशक

न्यू साधना पॉकेट बुक्स

70, रोशनआरा प्लाजा,

रोशनआरा रोड, दिल्ली-110007

दूरभाष: 32536004 9350186641

एकमात्र वितरक

साहनी पब्लिकेशन्स,

4777, डॉ॰ मित्रा गली,

रोशनारा रोड, दिल्ली-7

दूरभाष : 23822006, 23820751

Email : sahni@sahnipublications.com
Website : www.sahnipublications.com

मूल्य : 50.00 रुपये

संस्करण : 2006

मुद्रक : **सलमान ऑफसेट प्रेस**

यन्त्र सिद्धि : 50/- रुपये

पाठकों से

एक बार फिर आपके सामने प्रस्तुत हूं। आपका स्नेह मेरी विवशता बन गई है। संभव है कि अधिक लिखने में उसमें तेजस् कम हो जाता हो, इस पुस्तक में भी आपको ऐसा बिखराव दिखे तो कोई आश्चर्य नहीं, इस पुस्तक को लिखने में कुछ अप्रत्याशित विषमतायें आईं और वे मेरी एकाग्रता को भंग करती रहीं। मेरी इस विवशता और प्रमाद को आप क्षमा कर देंगे। आपके स्नेह का मैं दुरुपयोग नहीं करना चाहता था परन्तु परिस्थितियों ने मुझे दोष-भाजन बना दिया।

कितने कष्ट कर होते हैं वे क्षण जब हम सांसारिक विपदाओं में पिसते हुए इस विद्या की ओर आशा की दृष्टि से देखते हैं और हमारे प्रयोग विफल होते चले जाते हैं, इससे भी अधिक दुःखद अनुभव तब होता है जब कोई मुझे यह लिखता है, इन ज्योतिषियों और तांत्रिकों ने मुझे लूट लिया, दोनों ही स्थितियां हमारे जीवन की विडम्बना हैं।

मैं न ज्योतिषी हूं, न तांत्रिक, किसी का कष्ट दूर करने की असाधारण क्षमता भी मुझमें नहीं है। मेरे संबंध में किसी भी प्रकार का भ्रम रखने से आपको निराशा हाथ लगेगी। मैं आपके कष्टों में सहभागी हूं और आपको स्वस्थ, सुखी बनाने के लिए हमारे ऋषियों ने जो उपचार बताये हैं, उनकी तकनीक व विधि बताने तक ही मेरी क्षमता है। हां, व्यक्ति के रूप में आप मेरा उपयोग करने के लिये अधिकृत हैं। मेरे घर के द्वार बंद नहीं हैं, इसलिये पूछकर आने की परेशानी भी नहीं है पर मेरी क्षमता और मेरे निजी जीवन की विवशता का विचार अवश्य कर लें।

कर्मफल को मैं मानता हूं—इसलिये वशिष्ठ मेरे आदरणीय हैं, किन्तु जीवन में कर्मफल का चमत्कार भी मैंने अधिकतर देखा है इसलिये विश्वामित्र मेरे आदर्श हैं। भाग्य हमारा कर्मफल है, उसे भोगना हमारी विवशता है किन्तु उस नियति को भोगने की बाध्यता हमारे मनुष्य होने का प्रमाण नहीं है। पुराण और इतिहास हमें

समझाते हैं कि मनुष्य की क्षमता के आगे विधि नतमस्तक है, पर इतना साहस, संकल्प और साधना जिसमें हो, वही चुनौती दे सकता है।

एक प्रार्थना है—आप इस विषय में श्रद्धा रखते हों, तो ही ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए, किसी प्रकार की शर्त या फल के प्रति लोभवश भावना से साधना नहीं करनी चाहिए। पात्रता का विकास स्वतः इन साधनाओं से सिद्धि प्रदान कर देगा।

—गोविन्द शास्त्री

अनुक्रमणिका

अप्रासंगिक

यंत्र विद्या पर एक विवेचन पहले प्रस्तुत कर चुका हूं। वैसी शृंखला फिर प्रकाशित होने की योजना बनी तो पहले की पुस्तक से आगे की बात लिखना ही व्यवहारिक लगा। उन युक्तियों का पुनः लेखन नीरस ही नहीं अनावश्यक पुनरावृत्ति हो जायेगी, इसलिये आगे की बात करनी ही उचित लगी। आगे की अर्थात् उच्चतर स्तर की बात अधिक तकनीकी होगी ही और कुछ जटिल भी फिर भी उस जटिलता से बचने या अतिशय सरल रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है तथा मौलिकता सम्बद्ध रही है।

यंत्र जहां बायोफिजिक और बायोकेमिक पद्धति पर आविष्कृत वैज्ञानिक विद्या रहे हैं और विश्व में इस प्रकार प्रथम अनुसंधान रहे हैं वहीं ये कण्डक्शन और इकण्डक्शन इफैक्ट करने वाली पद्धति भी रहे हैं। आज विश्व में जो नवीनतम आविष्कार हो रहे हैं, उनका उत्स भारत के सुदूर अतीत में प्रामाणिक रूप में रहा है। माना आज यह विद्या हमारे लिये ही व्यवहार का विषय नहीं रही इसलिये इनके सूक्ष्म रहस्य भी हमारे लिए दुरूह बने गये। जिस युग में इनका प्रयोग होता था या जो निष्णात व्यक्ति थे उनके लिये प्रायोगिक स्तर पर रखी जाने वाली सावधानी और असंगितयां अभ्यास में थीं इसलिये असंगतियों से बचना और सावधानी रखना उनके लिए सामान्य बात रही थीं। आज हमारे पास उसका सैद्धान्तिक रूप है। इस पद्धति को प्रयोग में लाने पर ही हम इसकी व्यवहारिक कठिनाइयों को समझ पाते हैं।

इस विषय में यह शर्त रखना अर्थहीन है कि मुझे अमुक प्रयोग सिद्ध होने पर भी मैं इस विषय को सत्य समझूंगा। यह विषय तकनीकी है इसलिये प्रायोगिक ज्ञान, कुशलता और समर्पित भाव के साथ अचल श्रद्धा के साथ निरन्तर करते चलने की बात सफलता का आधार बना करती है। मेरे संबंध में एक बात स्पष्ट कर दूं कि यह विषय मेरे लिये आदरणीय है, यह मेरा व्यवसाय नहीं है, न इसे मैं अर्थ-साधन का माध्यम बनाना चाहता हूं। सच यह है कि आर्थिक आकांक्षाओं के विस्तार के आगे मैं भयभीत हो जाता हूं। यह सोचकर कि आकांक्षायें मुझे दरिद्र कर देंगी। आज मेरे पास वह सुख का उपवन है जिसमें छोटा-सा पादप भी अपनी पूरी उमंग, पूरे

सौन्दर्य के साथ खिल सकता है, मेरी प्रसन्नता छोटी-सी अर्थराशि में भी पूरे यौवन के साथ अभिव्यक्त हो जाती है। यद्यपि लोभी मैं भी हूं, पर वह भी एक दबाव है। परिवार का अनुबंध है और इसने मेरी प्रसन्नता के वन में लावा सुलगा रखा है अन्यथा मात्र दस पैसे की गोली लेकर या चार आने का गुब्बारा लेकर नाचने वाले बालक जैसी स्थिति को पाया जा सकता था। सच हमारा सुख का दायरा कितना बढ़ जाता है और सुख को, स्वाभाविक रूप में भोगने का अवसर हमें अनायास मिल सकता था किन्तु अवस्था, सामाजिकता और पारिवारिक विस्तार ने कितनी क्रूरतापूर्वक हमारे ऐश्वर्य को छीनकर हमें इच्छाओं के तपते रेगिस्तान में ला पटका। विपुल और विवेक मेरे सबसे छोटे पुत्र कितने बड़े सम्राट हैं—देखकर ईर्ष्या होती है—कल्पना का भी आनन्द लेते हैं, हल्की-सी फुलझड़ी जलाकर हर्ष विभोर हो लेते हैं, एक छोटी-सी कुल्फी को कितने स्वाद से खाते हैं।

माना इच्छाओं के आगे समर्पित होने की दासता मैं नहीं अपनाता पर आवश्यकताएं भी परिवार के अनुसार गुणित हो ही जाती हैं। सब कुछ होने के मोह से अधिक सुखकर है—कुछ न होना। भौतिक जंजाल से जिस स्तर तक अरुचि होगी, उसी स्तर तक व्यक्ति अपने से रूबरू होगा, पर इसके लिये अभाव बोध नहीं भाव का वैभव देखने का अभ्यास करना होता है। मेरे भाग्य में धन नहीं है, कुंडली में केमद्रुम योग है, जो जन्मजात दारिद्रय अथवा ब्राह्मण की हैंकड़ भाषा में—लक्ष्मी से द्वेष के रूप में' चरितार्थ हो रहा है इसलिये उसे प्रसन्न करने का प्रयास भी क्यों किया जाए ? मां के सारस्वत रूप की उपासना करना श्रेयस्कर लगा और उस ऋतुभरा ने अन्न-वस्त्र अनायास देते रहने की आश्वस्ति दे रखी है—यह मेरी राम कहानी है—मैं इसके पाठकों को यह परामर्श नहीं देता। लिखने—विशेषतया इस आत्मप्रशंसा के पीछे एक दुखद अनुभव रहा है कि अपवाद रूप में एक दो पाठकों ने मुझ पर यह आक्षेप लगाया है कि पैसा कमाने के लिये ये पुस्तकें लिखता हूं। हो सकता है वे भारत में लेखकों की स्थिति से परिचित नहीं हैं, केवल लेखन के पीछे जीवित रहना इस देश में संभव नहीं है। हां, व्यावसायिक लेखन जिसमें फिल्मों की पटकथा संवाद आदि आते हैं या अपराध साहित्य या ऐसे ही उपन्यास अथवा पत्रकारिता जैसी लेखन विधा से जीविकोपार्जन करना संभव है, पर इस तरह के विषय पर लिखकर कोई जिन्दा नहीं रह सकता। विगत आठ वर्षों में एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुईं, इन सबसे जितना मिला उसे न बताया जाए इसी में मेरा और प्रकाशक का भ्रम बना रहेगा।

असल में प्रारंभ में जो लिखा वह किसी महापुरुष (यशः शेष हनुमान प्रसाद जी पोद्दार कल्याण के सम्पादक) को दिये गये वचन का पालन था। बाद में आप

लोगों का आग्रह और प्रोत्साहन इसलिये अर्थो-पार्जन मेरे मन में कहीं भी नहीं है। इस विषय में जो कुछ भी विश्लेषण या प्रायोगिक दिया है, वह निष्पक्ष भाव से, विषय निष्ठ रूप से। उन तपः पवित्र—सत्यनिष्ठ ऋषियों का प्रसाद है, जिसे वितरण करने का सौभाग्य आप लोगों ने दिया। इसमें असत्य की कल्पना करना पाप है। कमी अथवा विफलता का कारण हमारी पात्रता में कमी, हमारे प्रयत्नों में निष्ठा और मात्रा की कमी, हमारे विधि विधान में दोष और अपेक्षित आचार एवं मंत्र के चयन में असावधानी।

ऐसा नहीं है कि इन प्रयोगों में विफल रहने वाले लोग भी कम हैं, पर सफल रहने वालों की भी कमी नहीं है। विफल रहने वालों के लिये मेरे मन में बहुत सहानुभूति और संवेदना है, किन्तु मैं कोई सिद्ध पुरुष नहीं हूं, जो अपने संचित तप के प्रभाव से बलात् सफलता दिला देते हैं। मैं प्रवक्ता हूं अथवा कन्सलटेंट फिजिशियन हूं। मेरे यथामति मार्गदर्शन से अपने लक्ष्य को भगवती कृपा से सिद्ध करने वाले लोग भी हैं, पर मेरी विवशता यह है कि न मेरे पास कोई ऐसी व्यवस्था है, जिससे साधना करने के इच्छुक जनों को अपने पास रखकर व्यावहारिक सहयोग दे सकूं, न इतना समय ही है कि इस प्रकार का कोई कोर्स विधिवत् चालू कर सकूं भविष्य में ऐसी सुविधा जुटा सका, तो यत्किंचित् रूप में लोक साधना भी कर सकूंगा।

मेरे मन में यह आशंका भी है कुछ प्रयोग सत्पात्र व्यक्तियों को सिद्ध कर दिये जायें। इससे मेरा भार भी कम होगा और एक सत्प्रयोजन भी सम्पूर्ण होगा। वैसे विगत दिनों में भी ऐसी योजना पर कार्य हुआ है, पर बहुत मन्द गति से और लोगों की व्यक्तिगत विषमता के समाधान के रूप में ही।

लक्ष्मी साधना के कोई निश्चित प्रयोग मेरे पास रेडिमेड नहीं हैं, न इस प्रकार के बने-बनाये यंत्रों का विक्रय ही मैं किया करता हूं। क्योंकि यंत्र बनवा कर उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करने में न कोई समय लगता है, न पूजा सामग्री पर ही कोई विशेष व्यय आता है, किन्तु उस पूजित यंत्र पर संबंधित मंत्र का पुरश्चरण करने में बहुत समय लगता है और ऐसी व्यवस्था करना जिम्मेदारी का काम है। मात्र ताम्र पत्र पर या चांदी के पत्र पर यंत्र को उत्कीर्ण कर बेचना बहुत बढ़िया धंधा है, इसमें दस से बीस गुना तक मुनाफा हो जाता है, परन्तु देवता के नाम पर किये गये इस छल से आदमी फलीभूत नहीं होता। इस अपराध की सजा नरकवास और शूकर-कूकर की योनि भोगने के रूप में मिलती है। आज के प्रत्यक्ष विश्वासी और धन के प्रति पैशाची आवेश से ग्रस्त व्यक्ति को ऐसे विचार ही अरुचिकर लगते हैं।

व्यक्ति जब मोहग्रस्त है, वह भविष्यत् की चिंता करता है अहंकार से पीड़ित

रहकर वह किसी के समर्पित नहीं हो सकता। अपने निर्दोष व्यक्तित्व को ईर्ष्या, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विषयों से मण्डित कर विरूपित कर आनन्दित होता है। युग प्रभाव और अपने संस्कारों की विवशता के आगे वह पशु बनकर मनुष्य योनि के वैभव को समझ नहीं पाता। प्रकृति स्वयं भावमय है, पर हम कार्पण्य दोष से मुक्त नहीं हो पाते, इसलिये परांबा के कृपाश्रय पर विश्वास न कर अपने क्षुद्र मोह से ग्रस्त हुए रहते हैं, विशाल साम्राज्य का अधिपत्य छोड़कर संकरी-घिनौनी कोटरी में रहना पसन्द करते हैं। जिस दिन हम अपने सारे आग्रहों को भूलकर परांबा के श्री चरणों में अर्पित हो जायेंगे, उस दिन कष्ट-चिन्ता अभाव जैसी चीजें समाप्त हो जायेंगी, आनन्द का एक अनन्त अगाध सागर हमारे सामने लहराने लगेगा किन्तु यह चिंतन व्यवहार में उतारने के लिये ज्ञान और श्रद्धा का बल चाहिये और इन सबसे अधिक चाहिये उनका कृपा कटाक्ष।

कार्पण्य का सामान्य अर्थ होता है कंजूसी किन्तु यह कंजूसी द्रव्य या वस्तु के प्रति ही नहीं होती, यह एक भाव है जो व्यक्ति को विश्व भावना से काटकर संकीर्ण अवस्था में ला पटकता है। मोह, लोभ, द्वेष, अहं जैसे मनोभाव व्यक्ति की सत्ता के वैभव को नष्ट करते हैं। माना युगानुसार—निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों एवं आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये साधन और धन चाहिये ही तथा सामाजिक स्तर एवं साधन सम्पन्नता की स्पर्धा में पिछड़ जाना व्यक्ति के अहं की पराजय होती है और कोई भी व्यक्ति पराजय होना सहन नहीं कर सकता इसलिये हमारा सारा ज्ञान बहिर्मुखी हो गया है, हमारा जीवन परिग्रही बन गया है और सामाजिक निष्ठा अर्थपूजन करने लगी है। ऐसी स्थिति में अर्थद्रोह कर पिछड़ा कहलाने का पाप हम तभी कर सकते हैं, जब तक हमारी सारी योग्यता और श्रम कुण्ठित नहीं हो जायें।

समूचे लोक दर्शन को बदलना असंभव है और सम्पन्नता की रोशनी में दरिद्रता की दयनीयता भोगना भी अभिशाप है, किन्तु सम्पन्नता को प्रेतावेश की तरह पाने का प्रयास दुख योनि है। दरिद्रता तभी तक कष्टकर है, जब तक व्यक्ति ज्ञान संपदा से अपरिचित है अर्थात् बाहर का विस्तार भीतर की दरिद्रता का सूचक है। और भीतर की सम्पन्नता बाह्य भौतिक साधनों के प्रति अरुचि और उनका सहज विकर्षण है। सभी लोग अर्थ के प्रति लालसा का परित्याग कर दें, यह संभव नहीं, पर उसके दानवी आधिपत्य में आवेशभाव से रहने लग जायें ऐसा अनुचित है। हमारी आवश्यकताओं और अभावों को हम मां ऋतंभरा को अर्पित कर दें और इस सीमा तक निस्पृह हो जायें कि ये अभाव हमें मृत्यु का ग्रास भी बना देंगे, तो कोई बात नहीं, तो निश्चय से हम सुखी हो जायेंगे। क्या हमारे जीवन में ऐसे अवसर नहीं आये,

जब हम ऐसे कार्यों को भी सम्पन्न कर चुके होते हैं, जिन्हें पूरा करने के साधन और क्षमता हमारे में नहीं थी। संयोग या भगवती की कृपा से सम्पन्न होने के साधन स्वतः जुटते गये।

इस सबके बावजूद अर्थ प्राप्ति के लिये किये जाने वाले मांत्रिक या तांत्रिक प्रयोग दीर्घकालीन साधना से सफल हुआ करते हैं, क्योंकि धन हमारे जीवन का एक आधार है और उसकी प्राप्ति हमारे पूर्वकृत सुकर्म या दुष्कर्म पर निर्भर करती है। उस फल में परिवर्तन करने के लिये गुरूतर प्रयास करना अत्यावश्यक है। मारण जैसे दूषित प्रयोग, हमें तब तक नहीं करना चाहिये, जब तक वह अत्यंत आवश्यक न हो जायें। इसके साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिये कि ऐसे घृणित कृत्य के लिये जैसे यहां कठोरतम दण्ड है, वैसा ही कठोर दण्ड उस अलक्षित व्यवस्था में भी है।

सकाम अनुष्ठान कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु सकाम इतना सरल नहीं होना चाहिये कि चाहे जिस कामना या कष्ट के लिये अनुष्ठान जैसी विद्या का प्रयोग कर लिया जाए। सामान्य सांसारिक व्यवहार और विषमता को उसी प्रकार सहन कर लिया जाए, जिस प्रकार दूसरे लोग सहन करते हैं। अपने इष्टदेव को साधारण सी बात पर स्मरण करने से व्यक्ति का आत्मविश्वास मंद होता है और इष्टदेव जैसी सत्ता का अवमूल्यन हुआ करता है। हम मनुष्य हैं और मनुष्य को प्राप्त स्वाभाविक क्षमता का उपयोग करना हमारे लिये आवश्यक है। जहां भौतिक या दैहिक सन्ताप हमारी सहन शक्ति के लिये असह्य बन जाते हैं, वहां इनका प्रयोग करना उचित एवं व्यावहारिक है। शान्ति–पुष्टिकर प्रयोग किसी के भी लिये किये जा सकते हैं, रोग-दोष के शमन के लिये भी प्रयोग करने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु आकर्षण, वशीकरण जैसे अभिचारकर्म से तो बचना चाहिये।

जिन कुमारिकाओं का विवाह नहीं होता या जिन पति-पत्नियों में अलगाव की स्थिति हो रही हो, जहां दो मित्र किसी संयोग या परिस्थिति विशेष के चक्र में फंसकर मन-मुटाव के शिकार हो गये हों, जहां पति किसी अन्य स्त्री के चक्कर में फंसकर पत्नी की उपेक्षा करने लगा हो, वहां सम्मोहन, वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण करने में कोई आपत्ति नहीं है, ऐसी परिस्थिति के लिये ही तो इन प्रयोगों की रचना की गई है।

भौतिक आकर्षण और कामनाओं का मायावी विस्तार हमारे लिये दुर्निवार है, पर ये हम पर हावी हो जायेंगे, तो हमारा जीवन नरक हो जायेगा, पर पराधीन बन जायेंगे, इसलिये इनको अनुभव तो किया जाए पर इन्हें नियामक न बनाया जाए।

हम भारतीय वेद को परम-पवित्र मानते हैं और वेद यज्ञ प्रधान है अर्थात् वेद के चिन्तन को प्रत्यक्ष या क्रियामय रूप देने के लिये यज्ञ पद्धति स्वीकार करनी

पड़ेगी। यज्ञ इतना व्यापक दर्शन है कि उसमें सामान्य क्रियाकलाप और दैनिक जीवन के व्यवहार भी यज्ञवत् पवित्र और ईश्वर प्रयोजन की पूर्ति बन जाते हैं। भेद अर्थात् ज्ञान को प्राप्त करने के लिये हिंसा, असत्य, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि विकारों का त्याग करना पड़ता है। इन विकारों के रहते ज्ञान का शुभ प्रकाश प्रकट नहीं हो सकता। जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये इन बहुर्मुखी वृत्तियों से ऊपर उठना अनिवार्य है अन्यथा सिकन्दर जैसा अप्रतिम वीर भी मृत्यु के सामने असहाय, विवश भाव से क्रन्दन कर उठा था। इसके मुकाबले सुकरात वीर था, जिसने न जीवन के प्रति मोह रखा न मृत्यु के प्रति घृणा, दोनों उसके लिये सहज अवस्थाएं थीं और वे उसकी स्वभाव सिद्ध आनन्दमयता को अक्षुण्ण नहीं कर सकी थीं।

ऐसी ही उच्च अवस्था गौतम बुद्ध की थी, जिसे लोग पलायनवाद बतलाते हैं। पलायन तो तब होता है, जब गौतम शारीरिक अशक्ति या अन्य किसी अभाव से पीड़ित होकर जाते। सुन्दर युवादेह, सम्राट के वैभव सम्पन्न अधिकार और परम रूपवती पत्नी को छोड़कर जाने वाले गौतम एक अर्थ में भगवान राम जितने साहसी और अतुल वीर हैं।

मोह और परिग्रह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यज्ञ दर्शन इन विकृत मनःस्थितयों से ऊपर उठने की पद्धति हैं। प्रायः मैं सोचा करता हूं एक दिन वह आयेगा, जब मेरे परिजन मेरी इस देह का हवन करेंगे। मेरे सहस्रार का भी फल मेरे पुत्र के हाथों विस्फारित होगा, इस देह को समय खा चुकेगा और इस प्रतीक को भगवान अग्निदेव को समर्पित किया जायेगा। अन्तःकरण में अधिष्ठाता पद को प्राप्त मन इस देह के साथ जुड़े प्रसंगों को इसी के साथ जलने नहीं देगा, क्योंकि कषाय उसे स्वाभाविक रूप से प्रिय है, वह उस सारे इतिहास को ढोने के लिये अभिशप्त है, फिर भी मेरी चेष्टा रही है कि वह अपने आग्रहों और मोह मूढ़ता से मुक्त होकर उस यज्ञ का पुरोधा बने। मां काली के विलास स्थल श्मशान में लोग भयातुर होने के कारण मौन होते जाते हैं मेरे परिजन भी इस परमयोग को विषाद योग की बुद्धि से देखेंगे किन्तु वे यदि कालिका के स्वरूप और स्वभाव से परिचित होते, उनकी रूपश्री के परम दिव्य तेजस् को सह सकने की पात्रता उनमें आ सकती, तो प्रसाद योग के रूप में प्राकृतिक व्यापार के, मेरे देह योग के होता बनते। वास्तव में कितना सुखद प्रसंग है कि हम एक प्रयोजन को पूरा कर दूसरे प्रयोजन के लिये प्रवृत्त हो रहे हैं पर यह अनुभूति हमें तभी हो सकती है जब हम जीवन को प्रवृत्ति का प्रयोजन और हमारे कर्मानुबंध की पूर्ति समझ सकें और इसके लिये मोह के श्वेत अंधकार से ऊपर उठने की चेष्टा करते रहें।

जो लोग भौतिक पदार्थों एवं संबंधों से अपने-आपको जकड़े रखते हैं, उनके लिये स्वतंत्रता और जीवन दोनों ही स्थितियां अर्थहीन हो जाती हैं। उनको मृत्यु अत्यन्त कष्टकर हो जाती है, वे परिवर्तन को देखने का साहस खो चुकते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रकृति उनको यहीं कीट-पतंग या सर्प-प्रेत जैसी भोग देह देकर ढकेल देती है, ऊपर उठने लायक बल उसमें रहता नहीं, कर्म कषाय उनके अन्तःकरण पर लद जाते हैं और जितना दयनीय उनका जीवन रहा था, उससे अधिक दुःखद मरण बन जाता है।

यह विवेचन मात्र इस दृष्टि से किया है कि इस पवित्र शस्त्र को यदि हम भोगवादी दृष्टि से सिद्ध करना चाहेंगे, कामनाओं की पूर्ति और अहंकार की तुष्टि के लिये करना चाहेंगे, तो यह इसका और आपके समय का दुरुपयोग होगा। आत्मद्रष्टा ऋषियों के लिये यह मुक्त जीवन का लक्ष्य रही थी और ये सारे विधि-विधान मुक्ति साधना में आ रहे अवरोधों पर विजय प्राप्त करने के लिये व्यूह रचना कर रहे हैं, इनसे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अहंकार रूप छः अंग वाले कंस का पोषण करेंगे तो जीवन नष्ट और भविष्य भ्रष्ट हो जायेगा, इसलिये विवेकपूर्ण निर्णय लेने पर यदि इन प्रयोगों की सहायता आवश्यक लगे, तो ली जानी चाहिए।

एक तथ्य और हमारा जीवन यों तो पापों का ही फल है, यदि कोई दुष्कृत नहीं होगा, तो आवागमन की विवशता क्यों भोगनी पड़ती, फिर भी मनुष्य देह की शक्ति और स्वतंत्रता देवता से भी अधिक है। देवता का तो निश्चय हो चुका, वे कल्पान्त स्थायी हैं किन्तु मनुष्य चाहे तो साधना के बल से शिव के शून्य को कल्पान्त से पहले ही प्राप्त कर सकता है। पूर्ण पुरुष को शाप देने वाला, भगवान् को लात मारने वाला मानव ही रहा है इसलिये मनुष्य से श्रेष्ठ कोई स्तर नहीं, पर उस स्तर को प्राप्त करने पर ही मनुष्य की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया जा सकता है।

आप सबने मुझे जो स्नेह और आत्मीयता दी है, उसे आभार प्रदर्शन करके चुकता नहीं किया जा सकता, यह मेरी लोक साधना का फल है और अमोघ बल है। यदि मेरे किसी व्यवहार से आपको कष्ट हुआ हो तो मुझे दण्डित करने का आपको अधिकार है, पर इस शास्त्र के सम्मान में कुछ भी अपमान-जनक कहना बुरी बात है। इससे बचना चाहिये।

यंत्र क्या है ?

यंत्र का अर्थ हम मशीन से करते हैं। वर्तमान युग में मशीन का अर्थ समझाने की आवश्यकता नहीं। हमारे अधिकांश कार्य इसी मशीन के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। किन्तु जिन यंत्रों के संबंध में हम इस पुस्तक में विचार करेंगे वे भौतिक अतएव जड़ यंत्र न होकर, चेतनवत् कार्य करने वाले यंत्र हैं, इसलिये इनकी निर्माण-विधि और क्रिया-विधि दोनों ही मशीनों से भिन्न रहेंगी। वास्तविक दृष्टि से देखने पर हमारा यह शरीर अपने आपमें एक विलक्षण यंत्र है और विश्वबुद्धि से देखने पर यह सारा संसार इसमें घूमने वाले ये गुरुतर पिंड भी किसी विशाल यंत्र की रूप रचना ही सिद्ध करते हैं।

मानवकृत यंत्रों में और प्रकृति रचित यंत्रों में मूलभूत अंतर यह है कि ये प्रकृति के क्रिया व्यवहार के अंग हैं, जबकि मानव निर्मित यंत्र अपनी दोषपूर्णता के कारण विकृति को बढ़ाते हैं। यंत्र के रूप में हमारे यहां प्रचलित एक दर्शन है, एक सम्पूर्ण विद्या है, जिस प्रकार यंत्र अर्थात् मशीन की पूरी विधि-संहिता है, यंत्र का दर्शनशास्त्र हमारे जीवन में बड़ी गहराई तक प्रवेश किए हुए है। आज के व्यक्ति के जीवन में मशीनी यंत्र जिस रूप में अनिवार्य व्यवहार के विषय हैं, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण ये यंत्र रहे हैं, और हमने उनको व्यवहार में स्थान देकर सम्मानित किया है।

मशीन का कार्य, उद्देश्य एवं पद्धति भौतिक से भौतिक तक है इसलिये उसकी रचना एवं साधना का प्रकार भी भौतिक ही रहा करता है, हमारे यंत्र अभौतिक स्तर की साधना हुआ करते हैं, इसलिये उनको हम जड़ की तरह नहीं व्यवहारते। हमारे अभीष्ट के अनुसार यंत्रों को हम बनाते हैं, बनाने में—पत्र, स्याही, लेखनी, आसन के साथ-साथ उनमें प्राण-प्रतिष्ठा करने की विधि भी आ जाती है। मूलतः यंत्र एक मूर्तस्वरूप है, जिसे हम अपनी शक्ति से पूरित कर कार्यक्षम बनाया करते हैं।

जिन लोगों का यंत्र से परिचय नहीं है, वे उसमें छिपे या उसके माध्यम से व्यक्त होने वाले रहस्य को समझ नहीं पाते, जैसे वास्तु कला से अपरिचित व्यक्ति किसी मकान के नक्शे को देखकर कुछ समझ नहीं पाता तथा किसी मकान को

बनाने से पहले उसकी पूर्ण और निर्दोष कल्पना का ठोस रेखांकन नहीं कर सकता, जबकि रचना (निर्मित) के लिये इस प्रकार का रेखांकन आवश्यक होता है। किसी भी मशीन को बनाने के पहले उसका डिजाइन अथवा ग्राफ बनाया ही जाता है, हम भी जिन यंत्रों के संबंध में विचार करेंगे, वे प्रथम दृष्टि में ग्राफ ही लगते हैं किन्तु ये ग्राफ इतने सशक्त हैं कि रेखांकन में ही मूर्त तथा मांसल हो जाते हैं तथा हमारा कार्य सम्पन्न करते हैं।

इन यंत्रों का वर्गीकरण कार्यों के अनुसार किया गया है। संसार षट्कर्मों का रंगमंच है, इसलिये इन यंत्रों के भी रूप होते हैं। यंत्र की रेखाओं तथा अंकों एवं बीजों को पंचतत्व युक्त करने के लिये हम प्रतीक पदार्थ उनको अर्पित करते हैं। इच्छित कार्य के अनुसार उस यंत्र में आवेशित शक्ति को दिशा एवं गति देने के लिये वातावरण को तदनुरूप बनाते हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न यंत्र हैं, उनके मंत्र हैं, उन्हें लिखने के लिये कलमें हैं, स्याही हैं, पत्र हैं। यंत्र साधना करने में शक्ति का स्रोत कहां से प्राप्त होता है तथा यंत्र के धारण करने मात्र से हमारे अभीष्ट कार्य कैसे सम्पन्न हो जाते हैं ? इस पहेली को समझने के लिये हमें विश्वासी होना ही पड़ेगा, अन्यथा किसी तांबे का या भोज वृक्ष का पत्र हमारे लिये कोई विशेष सार्थकता नहीं रख सकता।

बिजली को स्टोर नहीं किया जा सकता किन्तु बैटरी में शक्ति को रक्षित रखा जा सकता है। मंत्र को जिस कार्य के निमित्त किया जाता है उसी तक सीमित रहता है जबकि यंत्र अपने आपमें स्वतंत्र अस्तित्व बन जाता है अर्थात् मंत्र को जिस किसी प्रयोजन के लिये या व्यक्ति के लिये प्रायोजित किया जाएगा, उसी पर अपना प्रभाव दिखलायेगा जबकि यंत्र जहां कहीं रहेगा वहीं अपना वातावरण बना लेगा। मंत्र, साधक की शक्ति का विकास है, यंत्र साधक की शक्ति का साधित प्रतीक है। जिस तरह हम घर में कोई पौधा लगाते हैं और उसका वातावरण अनिवार्य रूप से हमारे घर में छा जाता है, उसी प्रकार का प्रभाव यंत्र का रहता है फिर भी यह निश्चित है कि यंत्र में सारी शक्ति आरोपित होती है। सोने, चांदी या तांबे के पत्र को संस्कारित कर हम उसे अधिक से अधिक व्यक्त और शक्ति संपन्न कर लेते हैं। इतनी साधना के पश्चात् वह मात्र यंत्र न रहकर देवता बन जाता है, जिस देवता के सारे अंग होते हैं, चेतना होती है और क्षमता होती है पर उससे हमारा आत्मिक जगत् एवं सूक्ष्म वातावरण प्रभावित होता है, स्थूल प्रभाव भी सूक्ष्म के माध्यम से ही पड़ते हैं।

मंत्र के जप से उत्पन्न हुई शक्ति यंत्र में स्टोर हो जाती है—ऐसा हमारा विश्वास एवं अनुभव है। इस बात को यों भी समझा जा सकता है कि किसी प्रयोजन विशेष

के लिए तैयार उपचार के रूप में यंत्र का प्रयोग किया जाता रहा है। सिरदर्द बन्द करने की गोली व्यक्ति के निमित्त नहीं होकर व्याधि अथवा प्रयोजन के लिए बनाई जाती है, वह सीधे अपने लक्ष्य पर आघात करेगी, यंत्र भी (सारे ही नहीं कतिपय) प्रयोजनपरक होने के कारण चाहे जिस व्यक्ति के काम में लिये जा सकते हैं। कई प्रसिद्ध स्थानों में विशेष प्रकार से निर्मित यंत्र स्थापित हैं और उनके कारण वे स्थान आज भी प्रख्यात, पूजित एवं वैभवयुक्त हैं।

यंत्रों की रचना विधि का सामान्य रहस्य समझने के लिये हमारे घर, चिकित्सालय, सभाभवन, रेलवे स्टेशन आदि की रचना पर ध्यान दें, तो यह समझ में आ जायेगा कि प्रयोजन के अनुसार रेखाओं का संयोजन किया जाता है, पर इन नक्शों का केवल भौतिक प्रयोजन रहता है, इसलिये इनको रूप देने के लिये स्थूल पदार्थ और दैहिक शक्ति प्रमुख रूप से प्रयोग की जाती है। जहां सूक्ष्म किंवा मानसिक जगत् के माध्यम से कोई कार्य सम्पन्न किया जाता है, वहां इन रेखाओं का अर्थ और कार्य सूक्ष्म हो जाता है तथा इनको मूर्त किंवा मांसल करने के लिये व्यक्ति की भावना तथा मानसिक शक्ति ही आधार बना करती है। जिस तरह पूर्ण ज्ञान एवं शुद्ध कलाबोध के आधार पर निर्मित रचना ग्राफ बहुत समय तक निर्दोष रूप में काम करती है, उसी तरह सही विधि-विधान से और पूरी साधना से निर्मित यंत्र भी काम देता रहता है किन्तु इसके साथ यह ध्यान रखना होता है कि पूजित यंत्र का सम्मान होता रहे।

आखिर ये यंत्र इस तरह काम कैसे करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर तक पहुंचने के लिये बहुत कुछ आधार ऊपर बता दिये गये हैं। शेष में यह समझ लेना चाहिए कि प्रमुख रूप से यंत्र धातु के पत्र पर उकेरकर या उभार कर बनाये जाते हैं और धातु दोनों प्रकार की (दैहिक एवं मानसिक) धातुओं का मिश्रण ही होता है। भोज पत्र पर एवं अन्य पत्रों पर भी यंत्र लिखे जाते हैं, पर वे दीर्घकाल तक प्रभावपूर्ण नहीं रह पाते। नैमित्तिक कार्य के लिये धरती पर भी यंत्र लिखे जाते हैं पर वे साधना करते समय तक ही लिखे जाते हैं।

पात्र के पश्चात् स्याही के रूप में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ गंध प्रधान होते हैं और गंध पृथ्वी तत्व का गुण होने के बावजूद वायु के संसर्ग से फैलने लगता है। गंध का यह प्रसार यद्यपि चतुर्दिक हुआ करता है और केवल गंध के आधार पर हमारा प्रयोजन पूरा नहीं होता, किन्तु यंत्र रचना के समय हमारा केन्द्रीयकृत मन, जो शक्तिशाली चुम्बकीय विद्युत का उत्पादक और विसर्जक होता है, अभीष्ट व्यक्ति या स्थिति को काल्पनिक रूप से मूर्त करने लगते हैं और ये विद्युत तरंगें निश्चित दिशा से प्रक्षेपित होकर विशेष प्रकार से अपना प्रभाव विस्तार करने लगती हैं।

इस सिद्धांत के निगूढ़ रहस्य को समझने के लिये विश्वास होना ही चाहिए फिर भी परीक्षण करके जांचने की इच्छा हो तो, चक्रव्यूह यंत्र अथवा ज्वर नाशक यंत्र को आजमाकर देख लेना चाहिए। चक्रव्यूह यंत्र और कुछ नहीं महाभारत में रचे गये सैन्य व्यूह का नक्शा ही है, पर इस नक्शे के देखने या लिखकर पिलाने मात्र से सुख से प्रसव हो जाता है तो ज्वर नाशन यंत्र से मलेरिया जैसे ज्वर से छुटकारा मिल जाता है। ये यंत्र प्रत्यक्ष प्रभावकारी होते हैं। यह बात दूसरी है कि ज्वर नाशन यंत्र पीपल के पत्ते पर और चक्रव्यूह यंत्र कांसे की थाली पर लिखा जाता है तथा दोनों की इन दो भिन्न कार्यों में संगति भी रहती है।

यंत्र तीन तरह के होते हैं, रेखीय, अंकीय और बीजीय, किन्तु रेखा इनमें समान धर्म (कामन फैक्टर) के रूप में प्रयुक्त होती है अंकों को परस्पर विभक्त या संयुक्त करने के लिये एवं बीजों को एक नियत रूप देने के लिये रेखा अनिवार्य आधार बनती है। रेखा वास्तविक रूप से प्रकृति का मूल स्वरूप है। अक्षुब्ध शिव में जब विक्षोभ उत्पन्न होता है तो वह तरंगायित विधि से ही होता है, उनकी क्रियामय अवस्था विविध रूपों में विस्तारित अभिव्यक्त होती चली जाती है। ये रेखायें शिव और शक्ति के यतिबद्ध लास्य को अभिव्यक्त करती हैं। शब्द से भिन्न है इनका संसार फिर भी शब्द जितने ही मुखर हैं, अन्तर यही है कि ये कान का विषय न रहकर आंखों का विषय होती हैं अथवा चेतना के स्तर से व्यक्ति के मानस पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

अभी कुछ दिन पहले की बात है किशन एक छोटा-सा विद्यार्थी सातवीं कक्षा में पढ़ता था। अचानक वह विद्यालय से घर आ रहा था कि रास्ते में उसकी बोली बंद हो गई। जयपुर के स्टेट हास्पिटल में उसे दिखलाया गया। उपचार हुआ किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी परीक्षाएं होने वाली थीं, घर के सभी लोग चिन्तित थे तभी एक साधु आये। उन्होंने उसकी अवस्था देखकर बतलाया कि इस पर कोई ऊपरी व्याधि है और सात कुओं का जल मंगाकर एक यंत्र लिखकर पूजित किया गया, उसे धोकर पिला दिया तथा उसी यंत्र को कागज पर लिखकर गले में बांध दिया। किशन की वाणी खुल गई। सारे घर वाले प्रसन्न हो गये। वह सकुशल परीक्षा देकर घर गया। पर घर जाने के कुछ ही दिन बाद फिर उसकी वाणी चली गई। सौभाग्य से बाबा चौमूं में विराजमान थे। किशन को फिर लाया गया। फिर वही क्रिया दोहराई गई और वह फिर बोलने लगा। यह यंत्र पद्धति का प्रयत्क्ष चमत्कार था, इसे देखने वाले किशन के रिश्तेदार, पड़ोसी, अध्यापक, मित्र आदि अनेक लोग हैं और किशन स्वयं है। बाबा का कहना है कि किशन एक दिन पढ़कर आते हुए किसी कब्र पर पेशाब करने की गलती कर बैठा उस कब्र पर निवास कर रही आत्मा

के लिए तैयार उपचार के रूप में यंत्र का प्रयोग किया जाता रहा है। सिरदर्द बन्द करने की गोली व्यक्ति के निमित्त नहीं होकर व्याधि अथवा प्रयोजन के लिए बनाई जाती है, वह सीधे अपने लक्ष्य पर आघात करेगी, यंत्र भी (सारे ही नहीं कतिपय) प्रयोजनपरक होने के कारण चाहे जिस व्यक्ति के काम में लिये जा सकते हैं। कई प्रसिद्ध स्थानों में विशेष प्रकार से निर्मित यंत्र स्थापित हैं और उनके कारण वे स्थान आज भी प्रख्यात, पूजित एवं वैभवयुक्त हैं।

यंत्रों की रचना विधि का सामान्य रहस्य समझने के लिये हमारे घर, चिकित्सालय, सभाभवन, रेलवे स्टेशन आदि की रचना पर ध्यान दें, तो यह समझ में आ जायेगा कि प्रयोजन के अनुसार रेखाओं का संयोजन किया जाता है, पर इन नक्शों का केवल भौतिक प्रयोजन रहता है, इसलिये इनको रूप देने के लिये स्थूल पदार्थ और दैहिक शक्ति प्रमुख रूप से प्रयोग की जाती है। जहां सूक्ष्म किंवा मानसिक जगत् के माध्यम से कोई कार्य सम्पन्न किया जाता है, वहां इन रेखाओं का अर्थ और कार्य सूक्ष्म हो जाता है तथा इनको मूर्त किंवा मांसल करने के लिये व्यक्ति की भावना तथा मानसिक शक्ति ही आधार बना करती है। जिस तरह पूर्ण ज्ञान एवं शुद्ध कलाबोध के आधार पर निर्मित रचना ग्राफ बहुत समय तक निर्दोष रूप में काम करती है, उसी तरह सही विधि-विधान से और पूरी साधना से निर्मित यंत्र भी काम देता रहता है किन्तु इसके साथ यह ध्यान रखना होता है कि पूजित यंत्र का सम्मान होता रहे।

आखिर ये यंत्र इस तरह काम कैसे करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर तक पहुंचने के लिये बहुत कुछ आधार ऊपर बता दिये गये हैं। शेष में यह समझ लेना चाहिए कि प्रमुख रूप से यंत्र धातु के पत्र पर उकेरकर या उभार कर बनाये जाते हैं और धातु दोनों प्रकार की (दैहिक एवं मानसिक) धातुओं का मिश्रण ही होता है। भोज पत्र पर एवं अन्य पत्रों पर भी यंत्र लिखे जाते हैं, पर वे दीर्घकाल तक प्रभावपूर्ण नहीं रह पाते। नैमित्तिक कार्य के लिये धरती पर भी यंत्र लिखे जाते हैं पर वे साधना करते समय तक ही लिखे जाते हैं।

पात्र के पश्चात् स्याही के रूप में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ गंध प्रधान होते हैं और गंध पृथ्वी तत्व का गुण होने के बावजूद वायु के संसर्ग से फैलने लगता है। गंध का यह प्रसार यद्यपि चतुर्दिक हुआ करता है और केवल गंध के आधार पर हमारा प्रयोजन पूरा नहीं होता, किन्तु यंत्र रचना के समय हमारा केन्द्रीयकृत मन, जो शक्तिशाली चुम्बकीय विद्युत का उत्पादक और विसर्जक होता है, अभीष्ट व्यक्ति या स्थिति को काल्पनिक रूप से मूर्त करने लगते हैं और ये विद्युत तरंगें निश्चित दिशा से प्रक्षेपित होकर विशेष प्रकार से अपना प्रभाव विस्तार करने लगती हैं।

इस सिद्धांत के निगूढ़ रहस्य को समझने के लिये विश्वास होना ही चाहिए फिर भी परीक्षण करके जांचने की इच्छा हो तो, चक्रव्यूह यंत्र अथवा ज्वर नाशक यंत्र को आजमाकर देख लेना चाहिए। चक्रव्यूह यंत्र और कुछ नहीं महाभारत में रचे गये सैन्य व्यूह का नक्शा ही है, पर इस नक्शे के देखने या लिखकर पिलाने मात्र से सुख से प्रसव हो जाता है तो ज्वर नाशन यंत्र से मलेरिया जैसे ज्वर से छुटकारा मिल जाता है। ये यंत्र प्रत्यक्ष प्रभावकारी होते हैं। यह बात दूसरी है कि ज्वर नाशन यंत्र पीपल के पत्ते पर और चक्रव्यूह यंत्र कांसे की थाली पर लिखा जाता है तथा दोनों की इन दो भिन्न कार्यों में संगति भी रहती है।

यंत्र तीन तरह के होते हैं, रेखीय, अंकीय और बीजीय, किन्तु रेखा इनमें समान धर्म (कामन फैक्टर) के रूप में प्रयुक्त होती है अंकों को परस्पर विभक्त या संयुक्त करने के लिये एवं बीजों को एक नियत रूप देने के लिये रेखा अनिवार्य आधार बनती है। रेखा वास्तविक रूप से प्रकृति का मूल स्वरूप है। अक्षुब्ध शिव में जब विक्षोभ उत्पन्न होता है तो वह तरंगायित विधि से ही होता है, उनकी क्रियामय अवस्था विविध रूपों में विस्तारित अभिव्यक्त होती चली जाती है। ये रेखायें शिव और शक्ति के यतिबद्ध लास्य को अभिव्यक्त करती हैं। शब्द से भिन्न है इनका संसार फिर भी शब्द जितने ही मुखर हैं, अन्तर यही है कि ये कान का विषय न रहकर आंखों का विषय होती हैं अथवा चेतना के स्तर से व्यक्ति के मानस पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

अभी कुछ दिन पहले की बात है किशन एक छोटा-सा विद्यार्थी सातवीं कक्षा में पढ़ता था। अचानक वह विद्यालय से घर आ रहा था कि रास्ते में उसकी बोली बंद हो गई। जयपुर के स्टेट हास्पिटल में उसे दिखलाया गया। उपचार हुआ किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी परीक्षाएं होने वाली थीं, घर के सर्भा लोग चिन्तित थे तभी एक साधु आये। उन्होंने उसकी अवस्था देखकर बतलाया कि इस पर कोई ऊपरी व्याधि है और सात कुओं का जल मंगाकर एक यंत्र लिखकर पूजित किया गया, उसे धोकर पिला दिया तथा उसी यंत्र को कागज पर लिखकर गले में बांध दिया। किशन की वाणी खुल गई। सारे घर वाले प्रसन्न हो गये। वह सकुशल परीक्षा देकर घर गया। पर घर जाने के कुछ ही दिन बाद फिर उसकी वाणी चली गई। सौभाग्य से बाबा चौमूं में विराजमान थे। किशन को फिर लाया गया। फिर वही क्रिया दोहराई गई और वह फिर बोलने लगा। यह यंत्र पद्धति का प्रयत्क्ष चमत्कार था, इसे देखने वाले किशन के रिश्तेदार, पड़ोसी, अध्यापक, मित्र आदि अनेक लोग हैं और किशन स्वयं है। बाबा का कहना है कि किशन एक दिन पढ़कर आते हुए किसी कब्र पर पेशाब करने की गलती कर बैठा उस कब्र पर निवास कर रही आत्मा

के लिए तैयार उपचार के रूप में यंत्र का प्रयोग किया जाता रहा है। सिरदर्द बन्द करने की गोली व्यक्ति के निमित्त नहीं होकर व्याधि अथवा प्रयोजन के लिए बनाई जाती है, वह सीधे अपने लक्ष्य पर आघात करेगी, यंत्र भी (सारे ही नहीं कतिपय) प्रयोजनपरक होने के कारण चाहे जिस व्यक्ति के काम में लिये जा सकते हैं। कई प्रसिद्ध स्थानों में विशेष प्रकार से निर्मित यंत्र स्थापित हैं और उनके कारण वे स्थान आज भी प्रख्यात, पूजित एवं वैभवयुक्त हैं।

यंत्रों की रचना विधि का सामान्य रहस्य समझने के लिये हमारे घर, चिकित्सालय, सभाभवन, रेलवे स्टेशन आदि की रचना पर ध्यान दें, तो यह समझ में आ जायेगा कि प्रयोजन के अनुसार रेखाओं का संयोजन किया जाता है, पर इन नक्शों का केवल भौतिक प्रयोजन रहता है, इसलिये इनको रूप देने के लिये स्थूल पदार्थ और दैहिक शक्ति प्रमुख रूप से प्रयोग की जाती है। जहां सूक्ष्म किंवा मानसिक जगत् के माध्यम से कोई कार्य सम्पन्न किया जाता है, वहां इन रेखाओं का अर्थ और कार्य सूक्ष्म हो जाता है तथा इनको मूर्त किंवा मांसल करने के लिये व्यक्ति की भावना तथा मानसिक शक्ति ही आधार बना करती है। जिस तरह पूर्ण ज्ञान एवं शुद्ध कलाबोध के आधार पर निर्मित रचना ग्राफ बहुत समय तक निर्दोष रूप में काम करती है, उसी तरह सही विधि-विधान से और पूरी साधना से निर्मित यंत्र भी काम देता रहता है किन्तु इसके साथ यह ध्यान रखना होता है कि पूजित यंत्र का सम्मान होता रहे।

आखिर ये यंत्र इस तरह काम कैसे करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर तक पहुंचने के लिये बहुत कुछ आधार ऊपर बता दिये गये हैं। शेष में यह समझ लेना चाहिए कि प्रमुख रूप से यंत्र धातु के पत्र पर उकेरकर या उभार कर बनाये जाते हैं और धातु दोनों प्रकार की (दैहिक एवं मानसिक) धातुओं का मिश्रण ही होता है। भोज पत्र पर एवं अन्य पत्रों पर भी यंत्र लिखे जाते हैं, पर वे दीर्घकाल तक प्रभावपूर्ण नहीं रह पाते। नैमित्तिक कार्य के लिये धरती पर भी यंत्र लिखे जाते हैं पर वे साधना करते समय तक ही लिखे जाते हैं।

पात्र के पश्चात् स्याही के रूप में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ गंध प्रधान होते हैं और गंध पृथ्वी तत्व का गुण होने के बावजूद वायु के संसर्ग से फैलने लगता है। गंध का यह प्रसार यद्यपि चतुर्दिक हुआ करता है और केवल गंध के आधार पर हमारा प्रयोजन पूरा नहीं होता, किन्तु यंत्र रचना के समय हमारा केन्द्रीयकृत मन, जो शक्तिशाली चुम्बकीय विद्युत का उत्पादक और विसर्जक होता है, अभीष्ट व्यक्ति या स्थिति को काल्पनिक रूप से मूर्त करने लगते हैं और ये विद्युत तरंगें निश्चित दिशा से प्रक्षेपित होकर विशेष प्रकार से अपना प्रभाव विस्तार करने लगती हैं।

इस सिद्धांत के निगूढ़ रहस्य को समझने के लिये विश्वास होना ही चाहिए फिर भी परीक्षण करके जांचने की इच्छा हो तो, चक्रव्यूह यंत्र अथवा ज्वर नाशक यंत्र को आजमाकर देख लेना चाहिए। चक्रव्यूह यंत्र और कुछ नहीं महाभारत में रचे गये सैन्य व्यूह का नक्शा ही है, पर इस नक्शे के देखने या लिखकर पिलाने मात्र से सुख से प्रसव हो जाता है तो ज्वर नाशन यंत्र से मलेरिया जैसे ज्वर से छुटकारा मिल जाता है। ये यंत्र प्रत्यक्ष प्रभावकारी होते हैं। यह बात दूसरी है कि ज्वर नाशन यंत्र पीपल के पत्ते पर और चक्रव्यूह यंत्र कांसे की थाली पर लिखा जाता है तथा दोनों की इन दो भिन्न कार्यों में संगति भी रहती है।

यंत्र तीन तरह के होते हैं, रेखीय, अंकीय और बीजीय, किन्तु रेखा इनमें समान धर्म (कामन फैक्टर) के रूप में प्रयुक्त होती है अंकों को परस्पर विभक्त या संयुक्त करने के लिये एवं बीजों को एक नियत रूप देने के लिये रेखा अनिवार्य आधार बनती है। रेखा वास्तविक रूप से प्रकृति का मूल स्वरूप है। अक्षुब्ध शिव में जब विक्षोभ उत्पन्न होता है तो वह तरंगायित विधि से ही होता है, उनकी क्रियामय अवस्था विविध रूपों में विस्तारित अभिव्यक्त होती चली जाती है। ये रेखायें शिव और शक्ति के यतिबद्ध लास्य को अभिव्यक्त करती हैं। शब्द से भिन्न है इनका संसार फिर भी शब्द जितने ही मुखर हैं, अन्तर यही है कि ये कान का विषय न रहकर आंखों का विषय होती हैं अथवा चेतना के स्तर से व्यक्ति के मानस पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

अभी कुछ दिन पहले की बात है किशन एक छोटा-सा विद्यार्थी सातवीं कक्षा में पढ़ता था। अचानक वह विद्यालय से घर आ रहा था कि रास्ते में उसकी बोली बंद हो गई। जयपुर के स्टेट हास्पिटल में उसे दिखलाया गया। उपचार हुआ किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी परीक्षाएं होने वाली थीं, घर के सभी लोग चिन्तित थे तभी एक साधु आये। उन्होंने उसकी अवस्था देखकर बतलाया कि इस पर कोई ऊपरी व्याधि है और सात कुओं का जल मंगाकर एक यंत्र लिखकर पूजित किया गया, उसे धोकर पिला दिया तथा उसी यंत्र को कागज पर लिखकर गले में बांध दिया। किशन की वाणी खुल गई। सारे घर वाले प्रसन्न हो गये। वह सकुशल परीक्षा देकर घर गया। पर घर जाने के कुछ ही दिन बाद फिर उसकी वाणी चली गई। सौभाग्य से बाबा चौमूं में विराजमान थे। किशन को फिर लाया गया। फिर वही क्रिया दोहराई गई और वह फिर बोलने लगा। यह यंत्र पद्धति का प्रयत्क्ष चमत्कार था, इसे देखने वाले किशन के रिश्तेदार, पड़ोसी, अध्यापक, मित्र आदि अनेक लोग हैं और किशन स्वयं है। बाबा का कहना है कि किशन एक दिन पढ़कर आते हुए किसी कब्र पर पेशाब करने की गलती कर बैठा उस कब्र पर निवास कर रही आत्मा

ने क्रोध में आकर किशन को यह सजा दे डाली।

बाबा ने जो यांत्रिक प्रक्रिया अपनाई, उसे हम नहीं समझ सकते, न उस यंत्र का रहस्य व अर्थ हमें उतनी स्पष्टता से समझ में ही आ सकता है। कारण कि हमारे मन पर बाह्य आग्रह अधिक बने रहते हैं और उनके रहते हमारा ज्ञान सीमित रहता है, हम केन्द्रित नहीं हो पाते और हमारी ज्ञानेन्द्रियों की अति सीमित क्षमता में ही सिमटकर रह जाते हैं जबकि इस देह के परित्याग के पश्चात् हमारी शक्तियों और इन्द्रियों पर किसी प्रकार का बाह्य भार नहीं रहने के करण उनकी परिसीमा, कार्यक्षमता विकसित हो जाती है। किशन को पिलाये गये यंत्र में उस यान्त्रिक आकृति को भौतिक द्रव्यों के माध्यम से आकार दिया गया था और उनका सूक्ष्य विपाक उसको प्रतिरोधक शक्ति से युक्त करने तथा आत्मरक्षित करने का रासायनिक प्रकार था। गले में पहनाये गये यंत्र की रचना उस आत्मा के लिये अप्रीतिकर रही थी। इसलिए किशन की रुद्धवाणी मुक्त हो गई। इसकी प्रासंगिकता में यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार में कोई भी वस्तु अकेली नहीं है, प्रत्येक कण का अपना परिकर है, प्रत्येक पदार्थ का अपना परिवार है और किसी भी ऐसी व्यवस्था के माध्यम से हम एक वस्तु को आधार बनाकर रक्षा कवच का निर्माण कर दिया करते हैं, जिसका अदृश्य वातावरण उन वायवीय प्राणियों को विकसित किया करता है।

यंत्रों की रेखामयता में ऋजु, कोणिक और वर्तुल गति प्रदर्शित की जाती है। ये आकृतियां तत्वों के सूक्ष्म स्वरूप गुणों का रेखीय चित्रण करती हैं। त्रिभुजीय आकार या त्रिकोण सृष्टि के मूलभूत बिन्दु का विकास है तथा अधिकांश यंत्रों में वर्तुल या अष्टदल कमल के मध्य षट्कोण बनाया जाता है। इस षट्कोण में मंत्र के छः अंगों की प्रतिष्ठा की जाती है। ये अंग वे और वैसे ही होते हैं जैसे हमारे अर्थात् हृदय, शिर-शिखा, कवच, नेत्रत्रय और इनका समग्र मंत्र के जिन पदों से हमारा अंग न्यास करते हैं उन्हीं पदों से मंत्र का न्यास एवं अंग रचना करते हैं। यह त्रिकोण अकेले रहने पर तमोगुण प्रधान महाकाल भगवान् शिव के रुद्रमय रूप का प्रतीक उपस्थित करता है। अकेलापन सृष्टि का प्रवर्तन नहीं कर सकता, इसलिए अभिचार कर्मों के निमित्त की जाने वाली यांत्रिक आवृत्तियों में त्रिकोण की रचना की जाती है। षट्कोण या षड्ग चित्त यंत्र के बाहर अष्टदल कमल का आवरण होता है, यह सत्वगुण प्रधान विष्णु के रक्षक रूप का प्रतीक है विष्णु का परमास्त्र सुदर्शन इसी आरे जैसी आकृति का होता है। सबसे अन्त में चतुष्कोण होता है जो हमारे भूपुर का प्रतीक है और प्रतीकात्मकता में तमोगुण का प्रतीक है अर्थात् यंत्र रचना की सामान्य प्रक्रिया में मध्य भाग में रचा गया षट्कोण रजोगुणी प्रतीक है, बाहर से बनाया गया अष्टदल या षोडशदल कमल सत्व का प्रतीक है और चतुष्कोण रजोगुण

का प्रतीक है।

किसी भी वस्तु के अस्तित्व में आने से लेकर उसके पुनः स्वभाव में चले जाने तक तीन अवस्थाएं रहा करती हैं, जिन्हें हम ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के रूप में एक अधिष्ठाता के आधार पर पूजा करते हैं। ब्रह्मा का अर्थ होता है किसी भी वस्तु की उद्भव की अवस्था, उद्भव के पश्चात् आती है विकासमय स्थिति जिसे विष्णु के रूप में स्थापित किया करते हैं, विष्णु शब्द का अर्थ है विकसित होना। यंत्रों में चतुष्कोण तक विस्तारित से कमल अपने प्रसार का चरम सूचित करते हैं। यही विष्णुमय अवस्था है। अन्तिम आवरण के रूप में भूपुर अथवा चतुष्कोण में दिक्पालों की और उनके आयुधों तथा वाहनों की पूजा करने में तमोगुण की प्रतीक विधि काम में ली जाती है। चतुष्कोण पृथ्वी का अथवा तदाधारित तमोगुण का सूचक है। तमोगुण की ही अभिव्यक्ति है और इसीलिए कहा जाता है कि मृत्यु ही प्रकृति है, जीवन तो विकृति है।

इस तरह अधिकांश शास्त्रीय यंत्रों की रचना पद्धति में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रतीक रूप में रज, सत्व, तमोगुण की तरंगायित आवृत्ति षट्कोण, वर्तुलकोणिक एवं चतुर्भुज के रूप में बनाई जाती है। जैसा कि हम जानते हैं षट्कोण के मध्य में मूलमंत्र का अथवा मंत्र के स्वरूपभूत देवता का प्राण रहता है जो ब्रह्मा का अंश है। उसी ब्रह्ममय अंश की आंगिक पूर्णता अथवा क्रियाशील अवस्था छः अंगों से पूर्ण होती है, यह व्यक्ति का अथवा मंत्र की इकाई का नियत विकास है, इसके बाद मंत्र के कार्यकारी स्वरूप का निर्माण होता है, जिसमें उसका परिकर, परिवार अथवा बहुआयामी शक्ति का विकास हुआ करता है। जैसे विपुल शर्मा एक न्यायिक अधिकारी है। विपुल एक व्यक्ति के रूप में छः अंगों वाला प्राणी है पर उसका विस्तारित रूप कई स्तरों में प्रकट होता है। न्यायाधीश विपुल, घर जाकर पिता के समक्ष पुत्र, पत्नी के समक्ष पति, पुत्रों के साथ पिता, भाई के आगे भाई, मित्रों की संगति में मित्र, समाज-सेवी दल में सेवक और गुरु के समक्ष शिष्य बन जाता है। ये इतने सारे रूप एक ही व्यक्ति के हैं अर्थात् एक ही व्यक्तित्व अनेकों रूपों में प्रतिफलित हुआ है। तदनुसार उसकी कार्य करने की विधि एवं शक्ति भी भिन्न रूप हो जाया करती थी। विपुल का न्यायाधीश घर पर पुत्र के रूप में रहने पर दण्ड देने योग्य नहीं रहता। इसी प्रकार उसके विविध रूपों की विविध शक्तियां मिलकर ही विपुल के समग्र व्यक्तित्व को निरूपित करती हैं।

यह था दूसरा आवरण या स्तर ! इसके बाद आता है अन्तिम स्तर, जो लोक प्रकृति का है अथवा वह स्तर जो असन्तुलन होने पर समग्र अन्तस्थ को लील जाता है और सन्तुलित करने पर रक्षा किया करता है। इस तमोगुण की परिधि में सब

कुछ पनपता रहता है और यह एक प्रकार के बल के रूप में रक्षा करता है। भौतिक जगत् में और हमारे जीवन में भी तमोगुण एक प्रच्छन्न बल रहता है। उदाहरण के लिये 'मल' हमारे शरीर का स्थूल तमोगुण है, उसकी एक निश्चित मात्रा हमें स्वस्थ सबल रखने के लिये आवश्यक होती है यदि उस मात्रा में ह्रास हो जाए तो हमारा जीवन समाप्त हो जाता है और उससे अधिक संचित हो जाता है तो एक प्रकार की म्लानता छा जाती है। ऐसे ही निद्रा एक तमोगुणी प्रवृत्ति है निद्रा के आधार पर और उसकी मात्रा पर ही हमारा शारीरिक बल निर्भर किया करता है।

होने को दूसरे और तीसरे आवरण के बीच अन्य आवरण और हो सकता है, पर प्रमुख रूप से ये तीन आवरण ही रहा करते हैं।

दूसरे प्रकार के यंत्रों में जिनमें केवल अंक और कोष्ठक ही रहा करते हैं उनकी प्रतीकात्मकता और बढ़ जाती है। अंक शब्द की ही परिमाणात्मक अभिव्यक्ति है और संख्या वाले यंत्रों में हम प्रकृति में अवस्थित या प्रकृति के विविध रूपों को अंकित किया करते हैं।

ज्योतिष शास्त्र के अध्येता जानते हैं कि किसी भी व्यक्ति के अथवा व्यक्ति और स्थान के बीच जुड़ने वाले संबंधों का भावी स्वरूप जानने के लिये काकणी विचार किया जाता है। यह काकणी वास्तव में अक्षरों को बीजों को संख्यात्मक रूप देकर फिर विचार किये जाने की पद्धति ही है। काकणी निर्णय करने में ध्रुवांक बनाने की विधि इस प्रकार रहती है—अवर्ग अथवा स्वरों का ध्रुवांक 1. हुआ, कवर्ग का 2, चवर्ग का 3 टवर्ग का 4, नवर्ग का 5. पवर्ग का 6. य र ल व का 7. श ष स ह का 8. इसमें दो व्यक्तियों या किन्हीं दो वस्तुओं का परस्पर ध्रुवांक जोड़कर दोनों की अलग-अलग काकणी निकाली जाती हैं। इसमें 8 का भाग देने पर जिसके अधिक अंक होते हैं, वह ऋणी रहता है। मंत्र साधना करने पर भी मंत्र और साधक के बीच के संबंध ऋणात्मक हो रहे हैं या धनात्मक—इस बात का निश्चय करने के लिये काकणी पद्धति से विचार किया जाता है।

तंत्र में (शब्द) बीजों के माध्यम से अंकों को व्यक्त करने की ऐसी ही एक पद्धति और है पर उसमें यत्किंचित् अन्तर है। उससे भी ध्रुवांक बनाये जाते हैं। इस विधि में स्वरों की संख्या स्वरानुसार ही रहती है अर्थात् अ=1, आ=२, इ=3, ई=4, उ=5, ऊ=6, (ऋ, ॠ, लृ, लॄ कहीं-कहीं इन नपुंसक स्वरों को छोड़ने की बात भी कही गई है) ए, ऐ इत्यादि फिर दूसरे वर्ग में कवर्ग के 5 और चवर्ग के ञ को छोड़कर शेष चार इस तरह दूसरे वर्ग में 9 अक्षरों का प्रत्येक का एक-एक अंक तीसरे वर्ग में टवर्ग के 5 अक्षर—अ को छोड़ दिया जाता है और तवर्ग के 4 अक्षर इस प्रकार 9 अक्षर चौथे वर्ग में पवर्ग, पांचवें वर्ग में य र ल व और श ष स ह। जहां संयुक्त

अक्षर आ जाए, वहां अन्तिम वर्ण से बनने वाला अंक ही ग्राह्य होगा। इस सूत्र को समझने के लिये एक उदाहरण पर्याप्त रहेगा जैसे किसी का नाम अनिरुद्ध है। इसको संख्याओं में परिवर्तित करने पर उपर्युक्त सूत्र के अनुसार संख्या बनेगी अ की 1, नि के न की 9, रु के र की 2, द्ध के ध की 8 इस प्रकार 1 9 2 8 संख्याएं बनीं जिनका योग करने पर 2 आई वैसे किसी मंत्र या यंत्र की इस सूत्र के अनुसार काकणी बनाने पर ऋण धन जो होगा उसका निर्णय प्रसंगानुसार होगा।

उपरिवर्णित प्रसंग में यह स्पष्ट किया गया है तथा व्यवहार में भी हम देखते हैं कि पहले वस्तु का विस्तार होता है, फिर उसका गणनात्मक अथवा परिमाणगत रूप निर्धारित होता है। यंत्र पद्धति में जहां संख्या के इतिहास का प्रश्न आता है, वहां तंत्र ग्रंथ कहते हैं कि संसार का यह विस्तार शक्ति का ही विस्तार है, जो पहले शब्द के स्तर में होता है फिर उसकी गणना की जाती है। इस विस्तार में जब शक्ति एक से गुणित होती है, तो विश्व का प्रवर्तन करने वाली बनती है। व्यावहारिक दृष्टि से एक से गुणित होने पर कोई अन्तर नहीं पड़ता, इससे संख्या के मूलरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता यह तो ऐसी संख्या है, जो ऋणात्मक और धनात्मक संबंधों अर्थात् युति–वियुति से ही प्रभावित होता है। गुण और व्यवकलन से प्रभावित नहीं होता, न कर ही पाता है फिर भी गुणित कहने से आशय यह है कि शक्ति शिव से गुणित होती है इन दोनों में (निर्गुण अथवा गुणातीत शिव के साथ गुणमयी प्रकृति का संबंध गुणकर्ता के रूप में ही कहा जाता है, यौगिक नहीं, क्योंकि योग एक अवस्था है और गुणकता उन अवस्थाओं का संबंध है)।

एक से गुणित होकर शक्ति प्रणव मंत्र को, श्रीबीज को, भुवनेश्वरी बीज को, कामबीज को, प्रासाद बीज को, चिन्तारत्न बीज को, गणपति बीज, दुर्गाबीज, मार्तण्ड बीज, भैरव बीज, नृसिंह बीज, वराह बीज, वासुदेव बीज, हयग्रीव बीज, पुरुषोत्तम बीज आदि को निर्मित करती है।

तंत्र में एकाक्षरक बीज को कूट कहते हैं कूट का अर्थ होता है विहित, गुप्त। ऐसे बीज मंत्रों में अर्थस्वरूप शिव प्रच्छन्न रहा करता है।

यही प्रकृति दो से गुणित होकर हं सः इस प्रकार के मंत्र की सृष्टि करती है, शब्द और अर्थ के द्वित्व को अभिव्यक्त करती है। प्रकृति और पुरुष के रूप में व्यक्त द्वैत इस द्विगुणित प्रकृति का ही रूप है।

तीन से गुणित प्रकृति त्रिपुरा यंत्र की, शक्ति विनायक मंत्र की पासादिव्यक्षर मंत्र की त्रिपुटी मंत्र, चण्डनायक सूर्य, मृत्युंजय, शक्ति, शिव, गरुड़, वागीश्वरी के त्र्यक्षर मन्त्रों की रचना करती हैं। इन मंत्रों के साथ ही त्रिलोकी, सत्व, रज, तम रूप गुणत्रय, वेदत्रयी (वेद चार ही हैं किन्तु होत्र, अध्वर्यु, उद्गात्र रूप तीन पदार्थों का

विवेचन करने से वेदत्रयी कहलाती हैं) वर्णत्रय प्रणव मंत्र में (प्रयुक्त अकार, डकार, मकार) ज्येष्ठ, मध्यम, कनीय रूप में त्रिपुष्कर, तीन स्वर उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीन प्रकार की अग्नि दक्षिण, गर्हपत्य, आहवनीय, तीन काल अतीत, वर्तमान, अनागत, तीन शक्ति वाम, ज्येष्ठा, रौद्री, तीन वृत्तियां यज्ञ, अध्यापन, प्रतिग्रह, अथवा खेती, पशुपालन, व्यापार, तीन नाड़ियां इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, तीन वर्ग धर्म, अर्थ, काम की सृष्टि करती हैं।

चार से गुणित होकर पद्मिनीबंध (ओं ह्रीं हं सः) के चतुर्बीजात्मक मंत्र, चार वर्ण चार समुद्र, चार अन्तःकरण, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैश्वरी रूप चार वृत्तियां धर्म अर्थ, काम, मोक्ष रूप, चार पुरुषार्थ अथवा धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, विष्णु की चार मूर्तियां, गणपति के चार रूप, चार दिशाओं के दिग्गज उड़चाण, जालंधर, पूर्णगिरी, कामरूप ये चार पीठ, इनके अलावा और दूसरे चार के रूप में विख्यात जो पदार्थ हैं उनकी सृष्टि करती हैं।

पांच से गुणित प्रकृति सर्वाथदायिनी के रूप में पंचकूट (ह स क ल र इन पांचों वर्णों को एकीकृत करने पर पंचकूट कहलाते हैं) पंचाक्षरी मंत्र, सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाला पंचरत्न मंत्र--(ग्लूं, म्लूं, स्लूं, प्लूं, क्लूं) शिव का पंक्षाक्षरी मंत्र, गरुड का पंचाक्षर मंत्र, पांच कल्पवृक्ष मन्दार-पारिजात-सन्तान-कल्पद्रुम-हरिचन्द, कामदेव के पांच बाण कमल-अशोक-आम-नवमल्लिका-नीलकमल, पांच रंग सफेद, काला, नीला, पीला, लाल, पांच प्रकार के वायु प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान, शिव की पांच मूर्तियां, पांच कलायें, पांच ब्रह्म ऋचायें, पंच तत्व, पांच तन्मात्रायें, इनका सृजन करती हैं।

छः से गुणित होने पर प्रकृति षडाक्षर मंत्रों का यथा--शिव, कृष्ण, चन्द्रमा, नृसिंह के मंत्रों को, छः ऋतुओं को, गणपति की छः मूर्तियों को, छः रसों—मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्त, खारा, छः कोश अन्नमय, प्राणमय, ज्ञानमय, मनोमय, चैतन्मय, आनन्दमय को, गणपति की छः मूर्तियों की छः शक्तियों, शाकिनी-हाकनी-लाकिनी आदि छः शक्तिस्वरूपों तथा अन्य विख्यात छः पदार्थ समूह को रूप प्रदान करती हैं।

सात से गुणित होकर वह प्रकृति सप्ताक्षरी त्रिपुरा मंत्र, गणपति मंत्र, सात व्याहृतियों, सप्ताक्षर, अंकुश मंत्र को, सात पर्वतों—विंध्या-अरावली-सह्य-कृष्ण-मलय-महेन्द्र-शुक्तिमान् को सात लोकों को, सात स्वरों षड्ज ऋषभ-गान्धार- मध्यम-पंचम-धैवत्-निषाद को, सात ऋषियों-वशिष्ठ-कश्यप-अत्रि-गौतम यमदग्नि-विश्वामित्र-भारद्वाज को सात द्वीपों-जम्बु प्लक्ष-शल्मिक-कुश-क्रौच-शाक-पुष्कर को, सात ग्रहों (राहू केतु को छोड़कर) को, सात समिधाओं आक-पलाश-खैर-अपामार्ग-पीपल-

गूलर-खेजड़ा को, अग्नि की सात जिह्वाओं को तथा अन्य सात में सीमित पदार्थों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

प्रकृति आठ से गुणित होकर श्रीकर नाम के अष्टाक्षर मंत्र को, शक्ति के अष्टाक्षर मंत्र को, सूर्य, दुर्गा, परमात्मा, नीलकंठ, वासुदेव के अष्टाक्षर मंत्रों को, अष्टपत्र में लिखे जाने वाले कामार्गल और घटार्गल यंत्रों को, अष्टगंध में प्रयुक्त द्रव्यों को रक्त चन्दन-श्वेत चन्दन-कपूर-कस्तूरी-केसर-अगरु-गोरोचन-गंध आठ भैरव स्वरूपों असितांग-रुरु-चण्ड क्रोध-उन्मत्त-कपाली-भीषण, संहार को, आठ सर्पों शेष-वासुकि, तक्षक-कर्पुटक-पद्म-महापद्म-शंखमाला-कुलिक को, आठ दिशाओं को—आठ वसुओं धर-ध्रुव-सोम-आप-अनिल-अनल-प्रत्यूष-प्रभास को, आठ प्रकृतियों अव्यक्त-महत्-अहंकार-पांच तन्मात्रा को गणपति के आठ रूपोंवक्रतुण्ड-एकदन्त- महोदर-गजानन-लम्बोदर-विकट-विघ्नराज-धूर्मवर्ण को, आठ सिद्धियों अणिमा-महिमा- लधिमा-गरिमा-प्राप्ति प्राकाम्य-ईशत्व-वशित्व को, अग्नि की आठ मूर्तियों जातवेदा- सपानजिह्व-हव्यवाहन-अश्वोदर-वैश्वनर-कुमार-तेज-विश्वमउख-देख मुख को, तथा अन्य विख्यात आठ पदार्थ जाति को अभिव्यक्ति देती है।

नौ से गुणित हुई प्रकृति नवार्ण मंत्रों को, नौ शक्ति तत्वों, प्रकृत-नाद-बिन्दु-नाद-बीज-वामा-ज्येष्ठा-रौद्री को, नौ रसो शृंगार-हास्य-करुणा-वीभत्स, अद्भुत-रौद्र-वीर-भयानक-शान्त को, नौ निधियों को, नौ रत्नों-माणक मोती, पन्ना-पुखराज-हीरा-नीलम-मूंगा-गोमेद-लहसुनिया को, नौ वर्णों अकार से ऋकार तक एक, लृकार से अः तक दूसरा, क-च-ट-त-प वर्ग के पांच वर्ग-यवर्ग (य र ल व) श वर्ग (श ष स ह) इस प्रकार वर्ण मालिका के नौ वर्गों को तथा अन्य जो नौ से बनने वाले हैं, उनको व्यक्त करती है।

दस से गुणित हुई प्रकृति सांसारिक दुःखों को नष्ट करती हुई गणपति के, त्वरिता के, सरस्वती के, यक्षिणी के, वासुदेव के, अश्वारूढ़ के दशाक्षर मंत्र को, त्रिपुरा के, पद्मावती के, रमा के दशाक्षर मंत्रों को, दश नाड़ियों को, विष्णु के दश अवतारों को, दश लोकपालों को रूप प्रदान करती है।

ग्यारह में अभिव्यक्त हो रही प्रकृति ग्यारह रुद्रों-हर-बहुरूप-त्र्यंबक-अपराजित-वृषाकपि-शंभु-कपर्दी-रैवत-मृगव्याध-शर्व-कपाली को, आद्यशक्ति, शक्ति विनायक, सरस्वती मंत्रों को तथा अन्य ग्यारह को इकाई से ख्यात पदार्थों किंवा मंत्रों को उत्पन्न करती है।

बारह से गुणित होकर नित्या, वज्र, प्रतारिणी, वासुदेव मंत्रों को, बारह राशियों, मासों, सूर्यों, विष्णु मूर्तियों को तथा अन्य ख्यात बारह को प्रकट करती है।

जब यह शक्ति स्वरूपा प्रकृति चौबीस से गुणित होती है तब सविता-शंभु-काम-

विष्णु-त्रिपुरा-दक्षिणा मूर्ति-उमा-गायत्री मंत्रों को, चौबीस तत्वों को अभिव्यक्ति देती है।

बत्तीस से गुणित होकर प्रकृति मृत्युंजय, नरसिंह, लोण, वरुण, हयग्रीव, दुर्गा, वराह, अग्न्युपस्थापन, गणपति, अन्नाधिप, दक्षिणामूर्ति, कामदेव, अघोर, बनवासिनी, भद्रकाली, महालक्ष्मी, वासुदेव, पुरुषोत्तम, तारा, पृथिवी, भूतेश्वर, क्षेत्रपाल, आपन्निवारण, मातंगिनी, सिद्धविदचा मंत्रों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

बियालीस और पचास से होती हुई वह संसार को विविध रूपाकार प्रदान करती रहती है।

यंत्र विज्ञान में इस विवेचन की प्रासंगकिता अधिक लगी क्योंकि किसी विषय के रहस्य को जाने बिना उसे करते रहना केवल मूर्खता ही नहीं, उसे करने में त्रुटियों की संभावना भी बनी रहती है।

सार के रूप में यह समझ लेना चाहिए कि संसार का विस्तार पहले सूक्ष्म में होता है अर्थात् भावात्मक जगत् की रचना पहले होती है और पदार्थ रूप की बाद में। यद्यपि इस पहले पीछे में कोई बड़ा अन्तर नहीं रहता, तदापि क्रम तो रहता ही है। ऊपर दिया गया विस्तारक्रम और गणित सूत्र पद्धति से विकसित होता है। होने को गुणित भी एक प्रकार से युति ही है किन्तु गणित शास्त्र में इसे गुणित या हत कहते हैं अर्थात् एक पक्ष पर दूसरे का आघात और यह आघात दोनों की शक्ति को आनुपातिक रूप में प्रतिफलित करता है, यह द्वि आयामी न होकर बहु-आयामी हो जाता है।

ऊपर जिन स्थितियों का आकलन किया गया है, वे मंत्रों के रूप में हैं। यहां मंत्र का अर्थ ज्ञान से है, क्योंकि कोई भी वस्तु पहले ज्ञानमय स्तर पर ही प्रकट होती है। जिस प्रकार भौतिक रूप एवं आकार लेने से पहले प्रत्येक पदार्थ गैसीस अवस्था में रहता है उसी प्रकार पदार्थ की स्थूल अवस्था से पहले वह तन्मात्रा के रूप में संघटित होता है, हम तन्मात्रा को भी स्थूल मानते हैं, क्योंकि उससे भी पहले वह कई स्तरों को पार करके उन-उन गुणों से युक्त हो लिया करता है। ये मूल विकासमयी स्थितियां शब्दमय हुआ करती हैं और ये इतनी पवित्र एवं शक्तिशाली होती हैं कि इनको हम देवता के रूप में मानते हैं।

शब्दरूप शक्ति और अर्थरूप शिव के सप्रयोजन मिलन से उनके विविध रूप और आकारों का विस्तार होता चला जाता है। यों देवता मूल रूप में एक ही शक्ति का प्रस्तारित रूप हैं, किन्तु उनके रूप के अनुसार उनकी शक्ति की प्रयोजनीयता स्थापित हो जाती है। जैसे एक ही दूध से निर्मित विविध पदार्थ अनेक रूप, गुण और उपयोगिता के आधार पर भिन्न-भिन्न नामों से ज्ञात हैं। पहले पदार्थ फिर उनका

गणित। यद्यपि गणित अपने रूप-प्रकृति में स्पष्ट और सत्य है, पर प्रतीक बोध में वह गूढ़ हो जाता है। जैसे तीन या छः या नौ। ये परिमाणात्मक संकेत विशेषण बनने पर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं, जैसे गुणत्रय षड्रिपु किन्तु अकेले रहने पर गूढ़ अथवा अस्पष्ट संकेतक रहते हैं। इसके बावजूद संख्या का अपना महत्व रहता ही है। तीन कहने से प्रकृति में अवस्थित जितनी भी तीन से बनने वाली इकाइयां हैं, वे सब आ जाती हैं। संख्या से बनाये जाने वाले यंत्रों में उन संख्याओं का संयोजन किसी समग्र संदर्भ को सूचित करता है और उनके सम्मिलित रूप से हमारा प्रयोजन जुड़ा रहता है।

मंत्र शास्त्र में वर्णों के अनुसार मंत्रों का नाम दिया रहता है और वर्णों की संख्या के अनुसार उनके गुण-दोषादोषदोषे का विचार किया जाता है। जैसे चौपड़ में या शतरंज में या ताश खेलने वालों की एक नियत संख्या होती है और तदनुसार ही वे खेलों में सम्मिलित हो सकते हैं, ऐसी ही किन्तु इससे अधिक कारगर व्यवस्था यंत्रों की संख्या परकता में हुआ करती है।

संख्या वाले यंत्र अधिकतर कोष्ठकों में लिखे जाते हैं। यह संख्या बायें, दायें तथा ऊपर-नीचे समान रहती है। अधिकतर यन्त्रों में संख्या एक नियत क्रम से प्रयुक्त होती है जैसे सत्तर के यंत्र में सोलह कोष्ठकों से बनने वाले यंत्र में आठ कोष्ठकों में एक से नौ तक (पांच को छोड़ कर) और शेष आठ में अट्ठाइस से पैंतीस तक की संख्याओं को इस प्रकार लिखा जाता है कि उनको किधर से भी जोड़ा जाए उनका योग सत्तर ही बना रहेगा।

सामान्यतया यंत्र रचना में एक संख्या को दो बार नहीं लिखा जाता किन्तु यह कोई ध्रुव नियम नहीं है, कई यंत्र इस पद्धति से लिखे जाते हैं कि उनमें एक ही संख्या की दो या अधिक बार आवृत्ति होती है। कोष्ठक वाले यंत्रों में योग एक-सा होता है। सब तरफ से योग एक ही होता है किन्तु यह भी अचल सिद्धान्त नहीं है, प्रयोजनवश ऐसे यंत्र भी संख्याओं से बनाये जाते हैं, जिनका योग प्रत्येक पंक्ति में एक-सा नहीं होता, तो भी उनके यंत्र में एक संगति अवश्य रहा करती है।

विविध आकृति परक यंत्रों में कोणिक और वर्तुल आकृतियां रहा करती हैं। ये आकृतियां भी सूचक हैं, एक प्रकार के संकेत हैं। यह सूचकता पंच तत्वों को आधार मानकर चलती हैं, जो इस तत्वमय संकेतार्थकता पर आधारित यंत्र बनाये जाते हैं उनमें चौकोर आकृति पृथिवी तत्व की एवं तदाश्रित तमोगुण होती हैं। अर्धचन्द्र और उसके दोनों तरफ कमल जैसी आकृति जल तत्व का सांकेतिक चिन्ह—अग्नि अथवा तेजस् तत्व का चिन्ह ऊर्ध्वशिरा त्रिभुज होता है। वायु तत्व का सांकेतिक षटकोण रहता है तथा आकाश का वर्तुल रहा करता है। यंत्रों की रचना

देख एक समय हमें ज्ञान होगा कि ये चिन्ह ही हमारे प्रयोजन की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक व्याख्या करते हैं। कुछ यंत्र ऐसे होते हैं कि ये सारे संकेतक जुड़े रहते हैं और कुछ में आवश्यकता के अनुसार अभिचार—मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, आकर्षण में केवल एक त्रिकोण सबके भीतर बनाया जाता है। प्रतीक बोध की दृष्टि से यह अग्नि तत्व का प्रतीक है, पर अग्नि या तेजस् तत्व मृत्यु सत्व और तमोगुण का मिश्रित रूप है। तत्वों की पारस्परिक अनुलोम एवं प्रतिलोम विधि एक अलग बात है किंतु लोक व्यवहार में हम देखते हैं कि अग्नि या तेजस तत्व विनाश में अधिक पटु हैं।

इन प्रतीकों के अलावा वृत्त को पंखुड़ियों से युक्त करता अति प्रचलित पद्धति है। इस रचना से यह आकृति कमल बन जाया करती है। कमल भारत का अविभाज्य प्रतीक है, यह सुख समृद्धि, उन्नति आध्यात्मिक वैभव का सूचक है। हमारे शरीर में स्थित चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार जैसे चक्र पद्म के समान पत्रमय हो जाते हैं। हमारे देवता भी पद्म पर आसीन हैं, कैलेंडरों या अन्य चित्रों में हम देवताओं को प्रायः कमल के फूल पर बैटा हुआ देखते हैं—इस कल्पना के मूल में यही शास्त्रीय आधार है कि मंत्र के बीजों तथा स्वरूप के अनुसार वे मुख्यतया किस तत्व से संबंधित चक्र में कितने दल हैं। कई बार तत्त्व पर आधारित पद्धति सीधे और स्पष्ट रूप में तथा कई बार निगूढ़ रूप में प्रदर्शित की जाती है।

यंत्र में जिस किसी भी देवता अथवा मंत्र की पूजा की जाती है, उसमें वह सांग-सपरिवार प्रतिष्ठित किया जाता है तथा उसमें रो हमारी शक्ति को निक्षेपित कर जागृत करते हैं।

यंत्र रचना और उसकी प्राण प्रतिष्ठा तथा पुरश्चरण में भी यही पद्धति अपनायी जाती है, जो मंत्र के सिद्ध करने में। शारदा तिलक जैसे ग्रन्थ के अनुसार मंत्र के अनुष्ठान में यंत्र की रचना और साक्षी के रूप में उसकी स्थापना आवश्यक होती है। ऐसा न करने पर दोष लगता है। अधिक विस्तार तो विशिष्ट मंत्रों का होता है अन्यथा चतुष्कोण के भीतर अष्टदल कमल और उसके भीतर षट्कोण तथा षट्कोण में मंत्र लिखकर यंत्र संपन्न कर दिया जाता है। छः कोणों में देवता के मंत्र के पदों के अनुसार अंग बना लिये जाते हैं।

यति और गति—यंत्र रचना में गति और यति ये दो महत्वपूर्ण स्थितियां हैं। गति का अर्थ है क्रियाशीलता, जिसे मोशन कहा जाता है और यति है उस गति का एक नियोजित क्रम, जिसे रिद्म कहा जाता है। संगीत में निर्वाह की जाने वाली यति से हम परिचित हैं। स्वरों का आरोह अवरोह द्रुत और विलंबित

तथा षड्ज आदि क्रम यति को ही परिभाषित करते हैं। संसार के इस दृश्य अतएव स्थूल विस्तार को हम रहस्यदर्शी आंखों से, जिन्हें प्रज्ञा चक्षु कहा जाता है, देखें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रकृति त्रिगुणात्मक होकर सप्त स्वरों से नियंत्रित हो रही है, उसका यह नाद ही विकसित होते हुए षट्कर्गों में व्यक्त हो रहा है। जिस तरह प्रकृति की यह निनाद क्रिया शाश्वत क्रिया है, उसी तरह संसार में मारण, वशीकरण, षट्कर्म नादाश्रित होने के कारण शाश्वत हैं। ये निरंतर होते रहते हैं। हम उनके प्रभाव क्षेत्र में जाकर उनका अनुभव मात्र करते हैं अर्थात् हम जन्मते नहीं हैं, न हम मरते ही हैं, प्रत्युत एक चिरंतन तत्व प्रकृति के इन क्रियामय स्तरों का संस्पर्श पाकर इन स्थितियों का भोक्ता (नहीं, द्रष्टा) बन जाया करता है।

हमारी इन्द्रियों का बहिर्मुखी प्रसार हमें सत् का ज्ञान नहीं होने देता इसलिये अज्ञान के प्रदेश में ही हमारी गति होती रहती है। रेडियो सुनने वाले और विद्युत शास्त्र के जानने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि यति का भेद अनेक प्रकार के कार्यों का सम्पादन करता है। फ्रीक्वेंसी का अन्तर ही सारे संचार स्टेशन को निर्बाध चलने दे रहा है, ऐसी ही व्यवस्था हमारे स्वर-तंत्र की है, जिसके कारण इतने लोगों की वाणी में एक रूपता नहीं आती और सब लोग अपने स्वर भेद से पहचान लिये जाते हैं। यंत्र में हम कितनी संख्याओं और बीजों का प्रयोग करते हैं, उनका संयोजन एक नियत प्रकार की यति को प्रकट करता है और हमारी साधना उस यति को अभीष्ट दिशा व व्यक्ति तक प्रक्षेपित करती है। साधना के इस प्रक्षेपण में साध्य व्यक्ति की निकटस्थता या दूरस्थता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि साधना में होने वाली एकाग्रता तथा हमारे द्वारा किया जा रहा जप सूक्ष्म होने के कारण इलैक्ट्रान्स में दोलन उत्पन्न करता है तथा मन के माध्यम से उत्पादित कर्णातीत तरंगें 'कण्डक्शन' विधि से सब कुछ प्रभावित करती हैं।

साधना में अथवा किसी मंत्र को मशीन की तरह कार्यक्षम बनाने के लिये, जो श्रम किया जाता है उसमें हम हमारी शक्ति विशेष प्रकार से संयोजित करने की तकनीकी कुशलता प्राप्त करते हैं, यह इसलिये आवश्यक होता है कि प्रत्येक व्यक्ति भले ही वह कितना दुर्बल हो, उसका एक प्रभामंडल होता है। प्रभामंडल प्रकृति ने प्रत्येक पदार्थ को दिया है। गर्भस्थ शिशु के चारों ओर जिस प्रकार एक जल पूर्ण जरायु रहती है, हमारी पृथ्वी पर्यावरण का कवच है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का एक पर्यावरण होता है, उस पर्यावरण को भेदकर हमारी उत्सर्जित शक्ति उस व्यक्ति को प्रभावित कर सके यही हमारी साधना की प्रखरता है और इस प्रखरता को प्राप्त करना ही हमारी साधना की आवश्यकता है। व्यक्ति के पर्यावरण को प्रभामंडल कहा गया है और यह अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक छाया हुआ है। वैसे प्रभामंडल धनात्मक

विद्युत के लिये आता है। यद्यपि विज्ञान (जहां तक मैं समझ सका हूं और मेरी यह समझ अल्पज्ञता भी हो सकती है) विद्युत के ऋणात्मक एवं धनात्मक आवेश में और आवेश की कार्यशैली तथा प्रभाव में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं पाया है, फिर भी जैसा भारतीय ज्ञान को वैज्ञानिक शब्दावली एवं शैली में रखकर देखने-समझने की चेष्टा करें तो यह माना जा सकता है कि धनात्मक आवेश में सत्वगुण की प्रबलता रहती है। रजोगुण में इन दोनों की कार्यकारी अवस्था रहती है।

जो लोग सत्वगुणी अतएव सत् के उपासक होते हैं, उनका यह प्रभामंडल बहुत सौम्य होकर भी शक्तिशाली होता है। अवतारों के चित्रों में उनके ऊर्ध्वगात्र (मुख मंडल) पर जो प्रभापुंज चित्रित किया जाता है वह प्रभा मंडल ही होता है, इसके विपरीत जो क्रूर राक्षस होते हैं उनके भी प्रभामंडल होता है, पर वह तमोगुणी होने के कारण भयोत्पादक एवं दाहक रहता है, इसलिये वह विकर्षित रहता है। सिंह जैसे हिंसक पशु का यह वैयक्तिक आवरण तमोगुणी अतः ऋणात्मक होता है और गाय जैसे सौम्य प्राणी में यह सत्वगुण प्रधान अतः धनात्मक होता है। हमारा प्रयोग बहुत कुछ इस पर भी निर्भर करता है, हम जिस व्यक्ति पर कर रहे हैं, उसका पर्यावरण किस प्रकृति का और कितनी शक्ति का है ? उसकी तुलना में हमारी निक्षेपण शक्ति कितनी है और जिस साधन का हम प्रयोग कर रहे हैं, वह कितना प्रभावकारी है।

अनेक यंत्र इस प्रकार के होते हैं कि ये पेटैण्ट औषधि की तरह उच्च कार्यक्षमता (हाई पोटंस) वाले होते हैं, वे अपना कार्य करते ही हैं, पर उनको भी सिद्ध करना होता ही है, दूसरी बात यह भी है कि साधक की अपनी पात्रता भी एक महत्वपूर्ण आधार रखती है, शक्ति सम्पन्न और साधना विधि में कुशल व्यक्ति सामान्य से प्रयोग से दुष्कर कार्य करने में समर्थ हो जाता है। अस्तु।

हम यति पर विचार कर रहे थे। यंत्रों में हम देखेंगे कि नौ या बारह अंकों को ही संयोजन की विविधता से हम अनेक रूप दे दिया करते हैं और यह संयोजन कभी अपनी सुकुमारता के कारण हमें प्रसन्न कर दिया करता है, तो कभी अपनी कुरूपता के कारण हमें भयभीत कर दिया करता है। यति की यह विशेषता हमें नृत्य में भी अनुभव होती है। भांगड़ा में जहां हर्ष और उल्लास का अनुभव होता है, गरबा में एक शालीनता और सात्विकता की प्रतीति होती है, तो महाकाल के ताण्डव में संहार की विभीषका हमें स्तब्ध कर देती है। इन नृत्य मुद्राओं में भी एक प्रकार की यति ही होती है, जो हमारे देह विन्यास एवं अंग-संचालन से प्रकट होती है।

यति का यह क्रम अंकों के रूप में एक ठोस स्वरूप ग्रहण कर व्यक्त होता है, किन्तु रेखाओं के रूप में सीधे यह प्रभावित कर सकता है। रेखाओं का यह व्यक्तित्व और चरित्र सार्वदेशिक होता है, क्योंकि यह मूल स्वरूप है, हमारी भाषा देश

और समुदाय के कारण विभाजित हो सकती है और एक के लिये दूसरे समुदाय की भाषा अज्ञेय रह सकती है, किन्तु रेखाएं अपने शुद्ध रूप में सबके लिये समान रूप से गम्य और प्रभावशाली रहती हैं। केवल रेखाओं का विन्यास ही हमें विविध प्रकार की अनुमति दे सकता है।

अंकों का तात्पर्य एवं रहस्य हमें अभ्यास, गुरुकृपा एवं परांबा के अनुग्रह से ही समझ में आ सकता है। समझाने के लिये किसी भी यंत्र में प्रयुक्त संख्या तथा उनके संयोजन से होने वाले रूप का अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है, किंतु इससे प्रत्येक यंत्र में होने वाले अनन्त संयोजनों को नहीं समझा जा सकता है जैसे श, क, ल के संयोजन से बनने वाले शब्दों शकल कलश एवं अन्य का भी अर्थ बताया जा सकता है पर इससे ल, श, क की मूल बोधक शक्ति, उनकी प्रतीकार्थता तथा गुणवत्ता का समग्र ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसके अलावा अंकों में एक विशेषता और होती है कि वे सर्वनाम शब्दों की तरह अपनी वाचकता में विस्तृत और अव्यय की तरह अपनी स्वरूपनिष्ठा के कारण जटिल रहा करते हैं। इनमें संक्षेपण और विस्तारण और गुणन, ऋण और धन के रूप में यति तथा वियुति के कारण ये गणितीय शक्ति से पूर्ण रहते हैं। इसलिये इनके रूप गति, यति, प्रभाव एवं क्षेत्र विस्तार को समझना जटिल रहता है।

अंक अपनी प्रकृति में इतने निर्दोष एवं सत् होते हैं कि हम वस्तु को न देखकर उसकी संख्या को ही प्रमाण मानकर सारा व्यापार-व्यवहार करते हैं। किसी बड़ी फैक्टरी में आ रहे कच्चे माल तथा बनकर जा रहे माल का मूल्य अंकों की विश्वसनीयता का ही विषय रहता है। विज्ञान के आविष्कार, रेलवे के पुल, विशाल भवन तथा अन्य उपकरण अपनी विश्वसनीयता के लिये अंकों से ही प्रमाणित हुआ करते हैं।

अंकों के संबंध में हम इसी पुस्तक में संक्षेप में पढ़ लेंगे। यहां प्रसंगवश बीजों पर (वर्णों पर) विचार कर लें। भौतिक विज्ञान भले ही न माने (क्योंकि उसके पास इसे परीक्षण से प्रमाणित करने की शक्ति नहीं है) किन्तु यह अनुभव सिद्ध ऋषियों द्वारा उपदिष्ट तथ्य है कि शब्द नाद रूप में प्रकट होता है और नादमय होने के कारण प्रत्येक वर्ण की लय स्वतंत्र रूप से स्वभावतः होती है, वर्णमाला के उनचास (ज व क्ष को छोड़कर) वर्ण सात को सात से गुणित करने के फल ही हैं।

बीजों की यति, प्रकृति का निनाद है और इस यति के अनन्त रूपों के कारण संसार में इतने अनेक रूपाकार पदार्थों का अस्तित्व है। हम यह मानते हैं कि संसार शब्द में निवास करता है अर्थात् पहले नाम होता है फिर नामी, यद्यपि इस पद और पदार्थ की निर्मिति में कोई अन्तर नहीं होता, फिर भी क्रम विधि के अनुसार पहले

पद होता है फिर पदार्थ। शाक्त दर्शन अर्थ को शिव स्वरूप मानता है। शब्द को शक्ति रूप तथा संसार प्रवर्तन में शिव और शक्ति की युति ही एकमेव कारण बनता है, इसलिये नाम और नामों में पद और पदार्थ की रचना में कोई कालक्षेप नहीं हुआ करता है।

यति का यह विलास ही शब्द को अनेक रूपों में और पदार्थों तथा स्थितियों में व्यक्त करता है। शब्द की तत्वात्मकता ही शब्द संसार का बहिर्मुखी रूप है। प्रकृति का स्थूलतम रूप पंचतत्व में आकर सम्पन्न होता है। प्रकृति की इस रचना पद्धति को अविकल रूप से प्रस्तुत करने के लिए ही हमारी वर्णमाला में पांच वर्ग हैं और प्रत्येक तत्व में अन्य बीज रूप में रहने के कारण पंजीकरण सिद्धांत की उपेक्षा नहीं कर पाते, इसलिये प्रत्येक वर्ग में पांच अक्षर होते हैं। शब्द का तांत्रिक दृष्टि से विवेचन एवं विश्लेषण इस विधि पर अधिक प्रकाश डालता है।

प्रत्येक अक्षर अपनी यति एवं लय के कारण विशेष प्रकार का प्रभाव डालता है और इसी यति के कारण हमारे मंत्रों में प्रयोजन के अनुसार वर्णों का संयोजन किया जाता है। आकर्षण के लिये जिस प्रकार के वर्णों का संयोजन किया जाता है, विद्वेषण के लिये भिन्न प्रकार के (शब्दों) वर्णों का संयोजन किया जाता है, क्योंकि उन शब्दों की यति में स्वभावतः अन्तर होता है। यंत्रों में रेखा गणितीय पद्धति पर जो आकृतियां बनती हैं, वे भी इसी यति की अभिव्यक्ति हैं।

यति का जो रूप हम समझते हैं, वह उसका स्थूल स्वरूप है। उसका मूलस्वरूप यत्किंचित् भी हम समझने लग जायें, तो विवेक और सत् के द्वार खुल जाते हैं। संसार समग्र रूप में विशाल आर्केस्ट्रा है, जिसमें अगणित स्वर मुखरित हो रहे हैं, आपका मेरा और हम सभी के स्वर उस आर्केस्ट्रा में यति दे रहे हैं, गति दे रहे हैं। यह आवश्यक नहीं कि इसमें जो कुछ बज रहा है या जो कुछ भी जोड़ा जा रहा है वह कर्णप्रिय ही हो, कर्णकटु भी इसकी विविधता को अधिक स्पष्ट रूप में उजागर करता है।

सामान्यतया हम यंत्रों को जागतिक कार्यों, आकर्षण-विद्वेषणादि षट्कर्मों के लिये ही समझते हैं, पर हम यदि चाहें तो इनको समाधि एवं मुक्ति तक का राजमार्ग बना सकते हैं। इसके लिये यति के मूल अतएव अव्यय रूप नाद को समझने का प्रयास करें, तो ये भौतिक विचित्रताएं सत् के साक्षात्कार का उपादान बन जायेंगी।

वास्तव में सत् अविकृत रहने के कारण सर्वव्याप्त है, किंतु जगत् असत् होने के कारण नाना रूपों में व्यक्त है। उसके ये रूप नश्वर इसलिये हैं कि इनमें सत् तिरोहित है अर्थात् संसार का यह बाह्य रूप भी सत् की निषेध-परक अवस्था ही है। इसका कोई स्वतंत्र रूप नहीं हो सकता अर्थात् सत् का एक आविष्कृत रूप उसके

अभाव में नाना रूप हो जाता है।

ब्रह्म के लिये सत्, चित् और आनन्द ये तीन शब्द कहे जाते हैं और इन तीनों का विलोम शब्द कोई होता ही नहीं, यदि होता है तो वह इनके विलय की इस 'अभाव' भाव में विलीन हो जाने की सूचना होती है। सत् का विपरीतार्थक मिथ्या, चित् का जड़ और आनन्द का विषाद होता है, पर इस शब्दों का तात्विक अर्थ विपरीत स्थिति का सूचक नहीं होता क्योंकि इससे विपरीत कोई तीसरी स्थिति होती ही नहीं, जैसे भाव और अभाव। अभाव शब्द में सत्ता के भाव का निषेध है, इस निषेध में कौन-सी स्थिति व्यक्त होती है, यह व्यक्त करने के लिये कोई शब्द नहीं हैं। इसी तरह सत् का विस्तार असत् में होता है, जैसे शुद्ध का विस्तार अशुद्ध में और धन का विस्तार ऋण में। उदाहरण के लिये दो और दो का जोड़ शुद्ध किंवा सत् रूप चार है। इससे भिन्न जितने भी उत्तर हैं वे अशुद्ध असत् हैं। इसी तरह असत् की व्यापकता भी अनन्त है, पर इस अशुद्ध-असत् में छुपे सत् से अस्वीकार भी नहीं हो सकता है।

यति के आह्लाद को समझना ही आत्मदर्शन है। यही मुक्ति का राजमार्ग बन जाता है। प्रत्येक वर्ण (अक्षर) के साथ जुड़े उसके संगीत को समझ पाना यंत्रों को आत्मलाभ के लिये प्रयोग करने का उपक्रम है। अक्षर के विस्तार से पहले बिन्दुमय और बिंदु के पहले नादमय अवस्था होती है। नाद भी भगवान के गुण और क्रिया तीन रूप में इच्छा के उदय से उत्पन्न होता है। परम शिव में उठा हुआ यह इच्छा का विक्षोभ परम शून्य के एकत्व में स्वभावतः और उसी अव्यक्त की एक द्वित्वम अवस्था है। मूल स्थिति में हो रहा स्पन्दन ही अपनी मुद्राओं के कारण युगल-क्रिया या मिथुन का विलास बनता है।

इस सुकुमार क्रिया का उदात्त रूप देखने के लिये मन का आग्रह मुक्त और आवेश रहित होना आवश्यक है, क्योंकि मन के कल्मष और किल्विषपूर्ण रहते हुए बुद्धि की निर्दोष महिमा और चित् का वैभव प्रकट नहीं हो सकता। शब्द अपने नादमय रूप के कारण हमें संगीत के आनन्दातिरेक से अप्यायित करता है और जब तक हम शब्द की मूल यति को सुनने से वंचित हैं, तब तक शब्द हमें जड़ विस्तार की भौतिक स्थितियों का ही प्रतीक बोध कराता है।

जिन लोगों ने अपने मन को निर्मल किया है, उन्होंने विश्व प्रकृति के संगीत को सुना है, वेद उनके लिये स्वयंभू ज्ञान के रूप में निनादित हुए हैं, उसका परम उन पर प्रकाशित हुआ है। योगीराज अरविन्द की अनुभूति इन्हीं अवस्थाओं और स्तरों का चित्रण करती है, तो कविकुलगुरु रविन्द्रनाथ के अनेक गीत भी इस निनाद के स्मृतिसुख से आप्लावित हैं, रामकृष्ण परमहंस भी यह सौभाग्य अपने समर्पण के बल

पर प्राप्त कर चुके हैं, तो आगम तीर्थ पुण्य स्मरण स्व. गोपीनाथ कविराज इसे ज्ञान योगी की गंभीरता से सुन सके हैं।

यंत्र के भौतिक रूप और सांसारिक बोधव्य से थोड़ा ऊपर उठकर हम उनके विश्वजनीन स्वरूप को समझ सकें, तो ये हमारे लिये मुक्ति का द्वार बन सकते हैं। सरलता यह है कि इसमें शब्द की मूल चेतना, रेखा, अंक और बीजों के सहारे व्यक्त की जाती है, पर वह हमारे लिये संगीत लिपि की तरह रहस्यपूर्ण एवं अज्ञेय ही बनी रहती है।

हमारा कितना बड़ा सौभागय और हमारे जन्म की कितनी बड़ी कृतार्थता होती यदि हम यंत्रों का साधन करते हुए अंकों और बीजों के नृत्य को, उनके गोपन को समझ पाते। चाहे हमारा यह आयोजन किसी काम्य-कर्म के निमित्त किये जा रहे अनुष्ठान से ही प्रारम्भ होता, पर एक बार मां की कृपा हो और उनका दिव्य रूप दिख जाए।

यंत्र साधना विधि—यंत्र अंकात्मक और रेखात्मक दोनों ही प्रकार के होते हैं। अंकों में भी इकाइयों को विभाजित करने के लिये कोष्ठक बनाये जाते हैं। अधिकतर संख्या से बनने वाले यंत्र कोष्ठकों में ही बनाये जाते हैं। इन संख्याओं के विन्यास में एक प्रकार की गति और यति रहा करती है। संख्या लिखने में हम 'अंकान वामतो गति' वाला क्रम मानते हैं, अर्थात् इकाई, दहाई, सैकड़ा, जबकि अंकों से बनने वाले यंत्रों में यह सिद्धांत आवश्यक नहीं रहता। कभी-कभी इनको लिखने में पहाड़े लिखने जैसी विधि अपनाई जाती है, कभी नागरी लिखने वाली पद्धति अर्थात् उर्ध्वाधः (ऊपर से नीचे) और उत्तर दक्षिण (बायें से दायें)।

अंकों के कोष्ठक नियत रहते हैं और नियत कोष्ठक में नियत अंक ही लिखे जाते हैं। किन्तु लिखने की चाल में परिवर्तन करने से यंत्र की प्रयोजनशीलता में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे प-र-हि-त्त ये चार अक्षर हैं। इनको इस क्रम से लिखने से परहित बना; हित और पर का स्थान विपर्यय करने पर हितपर ऐसे ही वर्णों का परिवर्तन करने पर 'परहित' 'रहितप' आदि सोलह शब्द बनते हैं। हमारे शब्द-शास्त्र के अनुसार इन संयोजनों में अधिकांश शब्द निरर्थक रहते हैं, क्योंकि हम सार्थक शब्द तक ही सीमित हैं, जबकि प्रत्येक शब्द का मूलरूप बीज से प्रारम्भ होता है और प्रत्येक बीज अपने आप में सार्थक व सम्पूर्ण इकाई रहा करता है। यही स्थिति अंक के यंत्र में अंकों की रहती है। प्रत्येक अंक स्वय के रूप में एक स्वतंत्र प्रतीक है। उनके संयोजन से बनने वाली आकृति उनके लिखने की चाल में परिवर्तन करने के लिये प्रभावित होती है जैसे यंत्र में एक से लेकर नौ तक की संख्याओं को विभिन्न कोष्ठकों में लिखना है, कोष्ठकों की संख्या का क्रम एवं तदाश्रित स्थानीय मान

परिवर्तित हो जाता है। श्रोता उस क्रम को सुनकर एक भिन्न संख्या का ज्ञान करेगा, भले ही उनको लिखे जाने वाले स्थान नियत हो।

इस स्थान विधि को चाल कहते हैं। यांत्रिक यंत्रों में चाल का परिवर्तन नहीं होता, वहां मंत्र मूल स्वरूप में प्रयोजन के अनुसार परिवर्तन किया जाता है। उनके लिये लिखने के क्रम में कोई बदलाव नहीं होता अर्थात् चाल का वहां प्रभाव नहीं होता।

लिखने की पद्धति से अनुष्ठान की मूल प्रक्रिया में अन्तर आता है। यद्यपि अक्षर जो वर्ण कहा जाता है, वह उसके पश्यन्ती क्षेत्र में प्रवेश करने का सूचक है, किन्तु भौतिक दृष्टि से जब उसे दृश्य-रूप किसी आधार पर लिखकर या उकेरकर दे दिया जाता है, तो उसमें एक तत्व और मिल जाता है तथा वह केवल कान का विषय न रहकर आंख का भी विषय हो जाता है। लिखित को समग्र कर उसे मूर्त रूप दे दिये जाने से उसमें वस्तु और अभिव्यक्ति शक्ति प्राप्त हो जाया करती है एवं इस रूप में वह अपनी स्थिति से ही वातावरण निर्मित कर लेता है।

यंत्र को साक्षी रखकर मंत्र का जप करना प्रायः आवश्यक हो जाता है, क्योंकि यंत्र के भी वैसे ही पांच अंग होते हैं, जैसे मंत्र के और उसका भी देवता होता है। आशय यह है कि जिस प्रकार देवता मंत्र का स्वरूप होता है, उसी प्रकार यंत्र भी देवता की रूप रचना होती है। इस रूप परिकल्पना में अनेक प्रकार की आंतरिक रचनायें की जाती हैं, यद्यपि इस रचना विधि में कोण, वृत्त और चतुर्भुजीय ऋजु और वक्र प्रकृति की रेखायें ही आधार बनती हैं, तदपि यह रचना-विस्तार अनन्त प्रकार का हो जाता है। एक ही देवता की कोई सुनिश्चित आकृति नहीं रहती। इसका अर्थ यह नहीं कि मूल आकृति में कोई अन्तर आ जाता है, पर उसकी प्रकृति में परिवर्तन अवश्य हो जाता है, जैसे एक व्यक्ति अपने घर पर जिन वस्त्रों को पहनकर जिस अवस्था और शैली में रहा करता है, वही शैली अवस्था और विन्यास में अपने कार्यालय में नहीं जाता है।

एक देवता का भी ऐसा ही स्वभाव होता है अर्थात् उसके षड्क्षर, एकादशाक्षर, पंचदशाक्षर जैसे मंत्रों की रचना में उनका मूल रूप अविकृत रहता है फिर भी उसकी प्रकृति एवं सज्जा में अन्तर आ ही जाता है और इसी अन्तर के कारण उस मंत्र से बनने वाले यंत्र की आकृति में भी अन्तर आ जाता है, क्योंकि तदनुसार उसका वातावरण बदल जाता है, उसके प्रतीकों में वृद्धि या संक्षेप हो जाता है।

माना, मंत्रों की तरह यंत्र भी सिद्ध होते हैं। वे केवल लिखने मात्र से ही कार्य सिद्ध करने वाले रहते हैं, किन्तु उनकी सिद्धता करने वाले की पात्रता पर निर्भर करती है। अग्नि के स्पर्श से प्रत्येक वस्तु अग्निमय हो जाती है, किन्तु यह सिद्धांत

पात्रता पर निर्भर करता है। कई पदार्थ ऐसे होते हैं, जो स्पर्श से अप्रभावित रहते हैं। ऐसी स्थिति में बलाबल अथवा संवाहकता की क्षमता का आधार काम करता है। यही स्थिति सिद्ध यंत्र की सिद्धता एवं उसकी कार्य शक्ति के प्रकट होने में भी लागू होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सिद्ध यंत्र केवल प्रयोग करने पर ही अपना प्रभाव दिखला देते हैं, पर उनका प्रभाव भी कार्य की योग्यता के अनुसार फलीभूत होता है। अच्छे धातु से जैसे कोई भी चीज बनाने पर बढ़िया ही बनती है, इसी प्रकार सत्पात्र व्यक्ति के द्वारा एक ही प्रयोग एक-सी मात्रा एवं विधि से कराकर देख चुका हूं और उसके परिणाम व्यक्ति के अनुसार तीव्र और मन्द रूप में प्रकट हुए हैं। एक व्यक्ति को निर्दिष्ट मात्रा से करने से पहले ही सफलता मिल गई। एक को निर्दिष्ट मात्रा तथा शेष विधि-विधान करने पर, एक को दोगुनी मात्रा में करने पर तथा एक को अब तक करना पड़ रहा है।

यह साधना अन्तर्मुखी है, इसमें व्यक्ति का सुन्दर रूप, बलिष्ठ देह, साधना, सम्पन्नता आदि आयाम कोई अर्थ नहीं रखते। साधना व्यक्ति के अन्तःकरण या आन्तरिक व्यक्तित्व का कार्य है। वह जितना सरल, निश्छल, विश्वासी, संकल्पशाली होगा, उतनी ही और वैसी ही सिद्धि उसे मिलेगी। साधना के लिये पात्रता प्राप्त करने के लिये आवश्यक गुणों में मन की निर्मलता, मंत्र के प्रति निष्ठा, गुरू की कृपा, समत्वभाव, संयम और सफलता के प्रति विश्वास माने जाते हैं। यह आधारभूमि है। इसके बाद मन की एकाग्रता आती है। संकल्प और विनियोग तो मंत्र के ही अंग हैं। यंत्र साधन में भी साधक यंत्र की कल्पना ध्यान करता हुआ अपने को यंत्रमय कर लेता है। मंत्र में न्यास विधि से साध्य और साधक में एकत्व का विषय है। यंत्र के तंत्र-शास्त्र में दोनों—साध्य और साधक—में एकत्व स्थापित करने के लिये विशेष प्रकार का आयोजन किया जाता है।

यंत्र साधना करने वालों को भी इस क्रिया की तकनीक व पद्धति की आवश्यक विधियों को समझ लेना चाहिये। ये विधियां यंत्र साधना के आधार हैं, उनके निर्माण के सिद्धांत-सूत्र हैं और इनका रहस्य जानने से विषय सरल हो जाता है।

किसी बालक को आप दो तरह की कुछ भी चीजें दे दीजिए—वे अगर वर्तुल-गोलाकार हुईं तो वह उनको माला या रेलगाड़ी की तरह जमीन पर चलायेगा और वे यदि चौकोर हुईं तो उनको घरौंदे की तरह जमायेगा। इस खेल में वह विविध प्रकार से संयोजन करेगा—कभी एक, कभी दो, कभी एक आगे या पीछे इस तरह से वह अपनी रुचि एवं मति के अनुसार प्रयोग करता हुआ सहज क्रीड़ा करता रहेगा। निश्चय ही उस बालक में इन संयोजनों की समझ नहीं है, पर उसके निर्दोष मन में इस प्रकार की रचना की जो सूझ आ रही है, वह निराधार या आकस्मिक नहीं

है, प्रयुक्त प्रकृति की एक कार्यशैली है, जो अज्ञात रूप में अपने को प्रकट करने के लिये उत्सुक रहती है।

बालक की इस रचना चातुरी का शास्त्रीय रूप है, जो यंत्र रचना में हमें देखने को मिलता है तथा इसे अथवा इस तकनीक को योग, पल्लव, संपुट, रोधन आदि शब्दें से जाना जाता है।

आशय यह है कि हमारे पूर्व पुरुषों ने प्रकृति की क्रिया विधि के रहस्यों को समझने तथा उनके अनुसार अपने प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये अनेक निगूढ़ पद्धतियां आविष्कृत कीं। बाल क्रीड़ा या मालाकार के पुष्प गुंथन में जो फूलों के क्रमिक संयोजन से एक यति बनती है, उसका विशेष अर्थ और प्रभाव भी होता है, जिसे हम यंत्र शास्त्र के ग्रंथों से समझ सकते हैं, यही यंत्र शास्त्र का मूल है, 'फण्डामैंटल' हैं।

आइये, अब हम इस विद्या की तकनीकी जानकारी प्राप्त करें।

यंत्र साधन करने से पहले यह देख लेना चाहिये कि उस यंत्र से हमारे संबंध किस प्रकार के बन रहे हैं ? इस प्रकार के संबंधों को जानने की अनेक विधियां शास्त्रों में दी गई हैं। ऋण-धन, (काकणी पद्धति) कुलाकुल चक्र, अवकहड़ा चक्र आदि। ये विधियां मेरी पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में (मंत्र विज्ञान) विस्तार से दी गई हैं। अंकों से बनने वाले यंत्रों में यह गणित किस प्रकार घटित होगा एतदर्थ उसे अपने नाम के प्रारम्भ के अक्षर से बनने वाले अंकों को आधार मानकर यंत्र के प्रारम्भ वाले अक्षर (अंक) तक गिनकर देखना चाहिये और छः, आठ, बारहवां अंक आ रहा हो, तो छोड़ देना चाहिये यदि आठ तक के ही अंक माने जायें, तो आठ का भाग देते हुए गणित कर लेना चाहिये।

अनेक यंत्र इस प्रकार के होते हैं कि उसमें सिद्धि अथवा साधना आदि का विचार नहीं किया जाता। वे स्वयं सिद्धि होते हैं जैसे लोक में भगवान राम का नाम सिद्ध है, उसे लेने वाला कोई भी रहे, श्रद्धा भाजन बनता ही है। उसी तरह कुछ यंत्र ऐसे होते हैं, जो अपनी क्षमता और सिद्धता के कारण पात्रता पर उतना निर्भर नहीं करते, तदपि मेरा यह मानना है कि सिद्ध यंत्रों की तरह यह स्थिति उस युग में रही होगी, जब मनुष्य, मनुष्य था। आज नहीं, इसलिये अनुभव यह कहता है कि सिद्ध यंत्र गुरू से प्राप्त कर लेने पर अधिक फलप्रद रहते हैं जिस यंत्र को सिद्ध करना है उसे संध्या समय किसी आम के पट्टे पर कुंकुम या मिट्टी बिछाकर लिखे तथा उसे श्रद्धा सहित प्रणाम कर सोते समय अपनी बायीं करवट रखकर सो जायें। भगवान शंकर को तथा उस यंत्र को यदि प्रार्थना करें कि मैं आपकी (इस यंत्र की) साधना करना चाहता हूं। कृपया मुझे सूचित करिये कि मैं सफल होऊंगा या नहीं ? तीन

दिन तक धरती पर सोते हुए संयमपूर्वक, हल्का भोजन करके यह प्रयोग करना है। यदि तीन दिन में स्वप्न में स्पष्ट संकेत मिल जाता है, साधक को वह वाक्य समझ में आ जाता है, तो तदनुसार करना चाहिये। यदि संकेतात्मक स्वप्न आता है तो उसे लिख लेना चाहिये और प्रातःकाल अपने गुरु या किसी अन्य विज्ञजन से उसका अर्थ पूछना चाहिये। स्मरण रहे—ऐसे वाक्य या स्वप्न याद नहीं रहते हैं, इसलिये उनको लिखकर रख लेना चाहिये। अनुकूल स्वप्न होने पर साधना का विचार ही छोड़ देना चाहिये। स्वप्न न होने पर भी प्रयोग कर लेना चाहिये, पर ऐसी अवस्था में यह मान लेना चाहिये कि यंत्र को सिद्ध करने में परिश्रम अधिक करना पड़ेगा। गुरू द्वारा प्रदत्त यंत्र में सिद्ध साध्य का विचार या स्वप्नादि विचार नहीं किया जाता है।

यंत्र लेखन के लिये—कलम, पत्र और स्याही आवश्यक होती है। काम्य कर्मों में जिस प्रकार का हमारा प्रयोजन होता है, तदनुसार ही पत्र प्रयोग में लिया जाता है। उद्देश्य के अनुसार पत्रों में—स्तम्भन के लिये सिंह या मनुष्य का चर्म, विद्वेषण के लिये गधे की खाल, वशीकरण या आकर्षण के लिये—भोजपत्र, मारण के लिये श्मशान का कपड़ा—प्रेतवस्त्र, उच्चाटन के लिये आंधी या बगूले के कारण उड़ा हुआ कोई वस्त्र काम में लिया जाता है।

लेखनी वशीकरण के लिये दूब, आकर्षण के लिये मोरपंख, संतापन के लिये बहेड़े की लकड़ी, मारण के लिये मनुष्य की हड्डी या चिता का अंगारा, उपद्रव नाश के लिये त्रिलोह, शान्ति कर्मों में सोने की, पुष्टि कर्मों में चांदी की अथवा अपामार्ग और चमेली की एवं सभी प्रकार के आसुरी कामों में मंगलवार के दिन विष्टि भद्रा और उस दिन तीक्ष्ण लोहे से बनाई गई लेखनी उपयुक्त रहा करती है।

स्याही के रूप में अष्टगंध और अष्टविष अधिकतर काम में आते हैं। अष्टगंध में दोनों चन्दन, केशर, कस्तूरी, गौरोचन, अगरु और कुंकुम आती है। अष्टविष में बाज की बीट, चीता (इसी नाम से दवा बेचने वालों के यहां मिलता है) नमक, धतूरे का रस, घर का धुआं, सौंठ, मिर्च, पीपल यह माने जाते हैं।

यंत्र साधन के लिये षट्कर्मों के अनुसार तिथि एवं वार का निश्चय किया जाता है। इस अनुकूलता के लिये कर्मानुसार व्यवस्था इस प्रकार है—शान्ति कर्म शुल्क पक्ष की दोज, तीज, पंचमी, सप्तमी में से किसी भी तिथि बुधवार अथवा बृहस्पतिवार पड़ता हो तो उत्तम रहता है। पुष्टिकर कर्मों के लिये चौथ, छठ, नवमी, तेरस का शुक्ल पक्ष उत्तम रहता है। विद्वेषण के लिये कृष्ण पक्ष की अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी को शुक्रवार या शनिवार हो, तो उत्तम माना जाता है। उच्चाटन कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी को शनिवार पड़ने पर किया जाना चाहिये, मारण कार्य कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या के दिन शनिवार पड़ता हो, तो अनुकूल

रहता है। स्तंभन भी इन्हीं दिनों में किया जाए तो ठीक।

शान्ति पुष्टिकर कर्म एवं सम्मोहन-वशीकरण जैसे प्रयोग करने से पहले साधक को अपनी नाम राशि से चन्द्रमा का विचार कर लेना चाहिये। उपासना में चन्द्रबल अवश्य देख लिया जाना चाहिये, क्योंकि चन्द्रमा का सीधा सम्बन्ध हमारे मन से है और साधना करने में मन एकमेव आधार है। अपनी राशि से अनुकूल राशि पर चन्द्रमा स्थित हो और तिथि-वार अथवा नक्षत्रों का योग आगे लिखी रीति से बैठ रहा हो, तो प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है—ज्योतिष में इनको स्वार्थ सिद्धि और अमृत सिद्धि योग कहा जाता है।

रविवार को हस्त, मूल, पुष्य, अश्विनी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र हो, सोमवार को श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, पुष्य नक्षत्र हो, मंगलवार को अश्विनी, अश्लेषा, कृतिका, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवार को रोहिणी, मृगशिरा अनुराधा, हस्त, कृतिका हो, गुरूवार को अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती हो, शुक्रवार को अश्विनी, अनुराधा पुनर्वसु, श्रवण, रेवती हो, शनिवार को श्रवण, रोहिणी, स्वाति नक्षत्र हो तो, स्वार्थ सिद्धि और अमृत सिद्धि योग बनते हैं। विशेष बात यह कि मंगल कृतिका रहने से स्वार्थ सिद्धि योग भी बनता है और यमदृष्ट योग भी बनता है। बुध को रोहिणी और गुरू को अश्विनी नक्षत्र रहने पर चर योग बनता है। अच्छा रहे—ऐसे दिनों को छोड़ दिया जाए, जिस दिन सुयोग और दुर्योग दोनों बन रहे हों।

अभिचार या दुष्कर्म करने के लिये क्रूर योग उत्तम फल देने वाले होते हैं, किन्तु किसी भी प्रयोग को सिद्ध करने के लिये इन दुर्योग वाले दिनों को नहीं चुनना चाहिये, भले ही वे प्रयोग क्रूर ही क्यों न हों ? दुर्योग बनने की स्थिति इन तिथियों, वारों एवं नक्षत्रों से बनती है—रविवार को चौथ या बरस तिथि रहे अथवा मघा, भरणी, घनिष्ठा नक्षत्र, सोमवार को छठ या ग्यारस तिथि हो अथवा चित्रा, विशाखा, मूल नक्षत्र रहे अथवा मंगलवार को पंचमी, सप्तमी दशमी तिथि रहे अथवा आद्रा, उत्तराषाढ़ा, कृतिका, भरणी नक्षत्र रहे, बुधवार को मूल, घनिष्ठा पूर्वाषाढ़ा, पुनर्वसु नक्षत्र रहे अथवा दोज, तीज, अष्टमी, नवमी तिथि हो, बृहस्पतिवार को छठ, अष्टमी, नवमी दशमी तिथि रहे अथवा कृतिका, अश्विनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र रहे, शुक्रवार को सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी तिथि रहे अथवा रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा नक्षत्र रहे, शनिवार को षष्ठी, सप्तमी, नवमी, एकादशी तिथि हो अथवा हस्त, रेवती, श्रवण, शतभिषा नक्षत्र रहे तो क्रकच, दग्ध, विषहुताशन, यमघंट और यमदृष्ट्रं नामक योग हुआ करते हैं। अपने नाम के अनुसार ही ये फल दिया करते हैं।

इन दिनों के अलावा कुछ सिद्ध मुहूर्त भी होते हैं, जैसे सूर्यग्रहण अथवा

चन्द्रग्रहण, महारात्रि (शिवरात्रि, होलिका, दीपमालिका) सिद्धपीठ एवं गुरु कृपा कर जिस भी दिन साधना प्रारंभ करने की आज्ञा प्रदान करें।

प्रयोग साधन करने के लिये दैनिक रूप से नियत संख्या या मात्रा में कार्य किया जाता है, इसलिये जिस प्रकार का प्रयोग हो, उसी के अनुसार प्रयोग साधना काल में तथा सिद्ध कर लेने के बाद उसका प्रयोग जिस दिन करना हो, उस दिन भी षट्कर्मों की आधार शक्तियों की पूजा एवं एक माला जप कर लेना आवश्यक होता है।

शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषन, उच्चाटन, मारण ये छः कर्म कहलाते हैं (आकर्षण, सम्मोहन, वशीकरण के ही अन्तर्गत हैं इसलिये इनकी अलग से गणना नहीं की गई है)। क्रमशः इनकी आधार शक्तियां रति, वाणी, रमा ज्येष्ठा, दुर्गा और काली हैं। इन कर्मों के रंग इस प्रकार हैं—स्तंभन का पीला, आकर्षण का नीला, वशीकरण का लाल, उच्चाटन का धुएं जैसा, शान्ति का सफेद और मारण का काला रंग। कृष्ण का रंग सघन अतएव नील था इसलिये वे आकर्षण के मूर्त्त रूप थे तथा कंस जैसे के लिये मारक होने के कारण काले रंग के थे। रंग लिखने के पीछे उद्देश्य यह रहा है कि इनमें से जो भी करना हो, उसी के अनुसार वातावरण बनता है तथा तारतम्य बैठ जाता है।

दिशा—षट्कर्मों के लिये दिशाओं की तरफ मुख कर बैठना भी महत्वपूर्ण है। इसकी व्यवस्था शास्त्रों ने इस तरह की है—वशीकरण में पूर्व दिशा, मारण में दक्षिण दिशा, बंधन में अथवा स्तंभन में पश्चिम वा दक्षिण, पुष्टिकर कर्म में उत्तर, आकर्षण में आग्नेय, मारण में नैऋत्य, उच्चाटन में वायव्य और मुक्ति साधना या निष्काम उपासना में ईशान की तरफ मुंह कर साधना सम्पन्न होती है।

जप के संबंध में सामान्य व्यवस्था यह है कि स्रोत वा चरित्र के पाठ जोर से, श्रव्य स्वर में किये जाते हैं तथा मंत्र के मानसिक जप करने होते हैं। मेरु तंत्र में लिखा है कि शान्ति कर्म के प्रयोगों में उपांशु पुष्टिकर्म में मानसिक और अभिचार कर्म में वाचक जप किये जाने चाहिए।

किसी भी पाठ या जप के दो प्रकार बताये हैं—वाचक और मानसिक। वाचक का अर्थ होता है, दूसरा सुन सके और मानसिक का अर्थ होता है मन में। मानसिक भी तीन प्रकार का होता है प्रोष्ठ, उपांशु और मानसिक। प्रोष्ठ का अर्थ होता है जिसमें होंठ हिलते हुए दीखते हैं तथा फुसफुसाहट की आवाज आती है, उपांशु में होंठों में बहुत हल्की हरकत होती है पर जीभ पूरी तरह से हिलती रहती है तथा मानसिक में जीभ या होंठ बिल्कुल काम नहीं करते। इसमें मंत्र की ध्वनि पहले श्वांस के आवागमन में कण्ठ के पास आघात करती-सी सुनाई पड़ती है। किन्तु शनैः-शनैः

अभ्यास करने पर श्वांस की प्रति ध्वनि लुप्त हो जाती है और केवल शब्द ही सुनाई देने लगता है। इस अवस्था में भी मन चलायमान रहता है, जपने योग्य मंत्र में पूरा रम नहीं पाता, इसलिये सात्विक एवं पवित्र आहार, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्पुरुषारुष की संगति एवं सद्विचार के साथ-साथ मन को एकाग्र करने का संकल्प पूर्वक अभ्यास। शास्त्रों में जप की जो संख्या दी गई है वह मानसिक जप की है।

माला—मंत्र जप के लिये माला आवश्यक है। यद्यपि शास्त्रीय अवस्था के अनुसार हमें जिस संख्या में जप करने चाहिये, वह संख्या नियत है किन्तु माला के मनकों के संबंध में भिन्न व्यवस्थाएं हैं। एक मत के अनुसार वर्ण मातृकाओं में जितने अक्षर होते हैं, उतनी ही मणियां होनी चाहिये अर्थात् पचास मनके और क्षकार का स्थानापन्न सुमेरु। दूसरा मत है कि आठ वर्गों (अ, क, च, ट, त, प, य, श) को आठ से गुणा करने पर (चौंसठ) मनके होने चाहिये। तीसरा मत कहता है कि पचास अक्षरों की वर्णमाला को अनुलोम और प्रतिलोम विधि से करने पर एक सौ और आठ वर्गों के आठ इस तरह एक सौ आठ मनके होने चाहिये तथा 'क्ष' कार को मेरु रूप में रखा जाना चाहिये।

अन्य मत के अनुसार कर्मानुसार माला के मनकों की संख्या निश्चित की जानी चाहिये। इस मत के अनुसार अभिचार कर्म के लिये पन्द्रह मनकों की माला, मुक्ति कामना के लिए पच्चीस मनकों की, लक्ष्मी प्राप्ति के लिये तीन मनकों की, स्वार्थ सिद्धि के लिये सत्ताईस मनकों की, काम्य कर्म के लिये चौवन मनकों की और सर्वकार्य सिद्धि के लिये एक सौ आठ मनकों की माला प्रयोग की जानी चाहिये। सारांश यह है कि मुक्ति कामना को छोड़कर शेष कार्यों के लिये सत्ताईस, चौवन या एक सौ आठ मनकों की माला उपयुक्त रही है।

मनकों के संबंध में व्यवस्था यह है कि सामान्यतया स्फटिक प्रवाल (मूंगा) मोती, सोना और पोताजीवा के मणियों की माला बनायी जाती है किन्तु ये सब शान्ति पुष्टि अथवा सौम्य कर्मों के लिये ही उपयोग में आती है। अभिचार अथवा अन्य कर्मों के लिये दूसरी वस्तुओं की माला काम में ली जाती है। जैसे स्तंभन के लिये हल्दी की, मारण के लिए मनुष्य या सर्प की हड्डी की, वैष्णवी कार्यों, साधनाओं में तुलसी की एवं उच्चाटन के लिये बहेड़े की माला उपयुक्त रहती है।

माला के संबंध में प्रत्येक व्यवस्था के निर्देश तंत्र शास्त्र में स्पष्ट दिए गए हैं। यदि मंत्र हमारी पूंजी है, तो माला बहीखाता अथवा तिजोरी है अतः इस संबंध में और सारी व्यवस्थाओं को मानना संभव न हो, तो भी मंत्र को गुप्त रखने की तरह मंत्र की सहचरी माला को भी गुप्त रखना ही चाहिए। मनके न मिलने पर करमाला से भी मंत्र जप किया जाता है।

माला को प्रयोग में लेने के पहले उसका संस्कार कर लेना चाहिए, विशेषकर कोई नया प्रयोग करना हो, या प्रयोग करने वाला स्त्री अथवा अदीक्षित व्यक्ति हो। एक माला से एक ही प्रयोग किया जाता है, पर रुद्राक्ष की माला से अनेक प्रयोग किये जा सकते हैं।

माला संस्कार—माला को पिरोकर स्नान ध्यान बाद 'क्रों' इस बीज मंत्र को एक सौ आठ बार जप पंचगव्य में तीन दिन तक रख छोड़े। चौथे दिन 'फट्' इस बीज मंत्र से धोयें तब पंचामृत से धोकर फिर साफ पानी से धोये। चन्दन, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित पदार्थों से आलोड़ित कर 'हं सौ' मंत्र से अभिषेक करे। नवग्रहों और दिक्पालों का पूजन कर घी, चीनी से युक्त तिलों का हवन करे। जिस मंत्र की साधना करनी है, उस मंत्र का जाप करने वाले ब्राह्मणों को भोजन करायें। माला को पंचगव्य से निकालकर वेदिका पर स्थापित करते समय सोने के पात्र की बात कही गई है, किन्तु सोने का पात्र न मिलने पर, पीपल के पत्तों को अष्टदल कमल की तरह रख लेना चाहिए।

माला से जप करने के नियम—प्रयोग में आते-आते यदि धागा पुराना पड़ जाए, तो नया धागा पिरोकर एक माला इस निमित्त जपे। माला को हिलाना या धुनना निषिद्ध है। माला को बायें हाथ से न छूये तथा माला को हाथ में मणिबंध पर न लपेटें। मणियां उंगली (अकेली उंगली) से न चलायें, मुख्यतः मनकों को चलाने में अंगूठे को ही काम में लेना चाहिए। माला जपते समय अंगूठे से दूसरे मनकों को न छूयें, जप करते समय मंत्र को लांघना नहीं चाहिए अर्थात् मंत्र बोल जायें और मनका न फिरे ऐसा नहीं होना चाहिए तथा न ही ऐसा हो कि मनका फिर जाए और मंत्र न बोल पायें। मनके फिराते समय मनकों की आवाज नहीं होनी चाहिए।

साधना काल में—(जप करते समय) इन बीस बातों से बचना चाहिए अन्यथा उस जप का फल राक्षस ले जाते हैं—ये बीस विकर्म (विपरीत कर्म) है—लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, काम, दंभ, ताडन, स्थान बदलना, मालिश-उबटन, असत्य एवं चाटुकारिता, पूर्ण वचन, गीत गाना, बाजा बजाना, शहद अथवा मदिरा, बहेड़े और करंज की छाया, मांस, माला, पान और पापियों से वार्तालाप।

ये बीस अनुकूल कर्म हैं—साधना काल में इनका पालन करने से सिद्धि मिलती है। यंत्र के अर्थ का चिन्तन, मंत्र को गुप्त रखना, नित्य और नैमित्तिक कर्म करना, जहां तक संभव हो कम बोलना, वेद शास्त्र का पारायण, अनावश्यक दूसरे लोगों की संगति, धरती पर सोना, तीन बार स्नान, दान करना, गुरु का पूजन, पंचगव्य से स्नान करना, हाथ में पवित्रा धारण करना, पंचयज्ञ, तर्पण करना और

प्रयोग के अनुकूल वस्त्र धारण करना।

किन्तु उसका इतना महात्म्य नहीं है कि उंगलियों से जो जप किया जाता है, उसका एक गुणा फल होता है उंगलियों की रेखाओं (जोड़ पर बनने वाले द्वीपों) को गिनने का आधार मानकर किया जाने वाला जप दस गुणा और माला से किया जाने वाला सौ गुणा फल देता है।

करमाला का क्रम संप्रदाय के अनुसार होता है। शाक्त मंत्रों में अनामिका के मध्यम पोर से (रेखा नहीं) आरम्भ करके नीचे की तरफ के पोर पर दूसरा, कनिष्ठका में नीचे से ऊपर की तरफ तीन पोरों की तीन फिर अनामिका का ऊपर वाला पोर छठा तब मध्यमा में ऊपर से नीचे उतरते हुए तीन पोर इस तरह कुल नौ और दसवें में तर्जनी का नीचे वाला पोर इस क्रम में तर्जनी के ऊपर और बीच वाले पोर सुमेरु रह जाते हैं। अन्य सम्प्रदायों में यह क्रम बदल जाता है।

माला के विषय में तंत्रशास्त्रों में विशेष कहा गया है कि रुद्राक्ष के मनके अत्यन्त पवित्र होते हैं इनसे सभी कार्य किये जाते हैं। यही माला एक ऐसी है, जिसे हर समय धारण किया जा सकता है अन्यथा दूसरे मनकों की माला को केवल जप के समय ही काम में लिया जाता है। कीर्तवीर्य अर्जुन का मंत्र अथवा गये धन की प्राप्ति के लिये शंख की माला, शान्ति एवं ऐश्वर्यकर मंत्रों में स्फटिक की, ऋद्धि-सिद्धि के लिये, कमलगट्टे की, सन्तान प्राप्ति के लिये पुत्रजीवा की, वशीकरण के लिये मूंगे की, मुक्ति साधना के लिये मोती की, कामना सिद्धि के लिये सोने की, चांदी में मढ़ी माला काम शक्ति की वृद्धि के लिये, स्त्री वशीकरण के लिये हल्दी की, पुरुष वशीकरण के लिये दर्वी की, ज्वर शान्ति के लिये लाख की, पित्त रोगों की शान्ति के लिये शंख की, स्वास्थ्य लाभ के लिये देवदार की, उच्चाटन के लिये आक की, तामस या अभिचार कर्म के लिये काले धतूरे की, हाथी के दांत की सर्वकार्य साधना के लिये, सम्मोहन के लिये ताम्बे के मणियों की, मारण के लिये लोहे के मणकों की, शक्ति प्राप्ति के लिये सफेद चन्दन की, यक्षिणी साधना के लिये लाल चन्दन के बीजों की, प्रेत बाधा शान्ति के लिये नीम की, लोगों को स्तंभित करने के लिए जांट अर्थात् खेजड़े की, डाकिनी से मुक्त करने के लिये बकायन की, ऋण स्तंभन (कर्जदार परेशान न करे इसके लिये) इन्द्रायण की, मारण के लिये बन्दर की हड्डियों की, राक्षस वशीकरण के लिये मनुष्य की हड्डियों की, बेताल सिद्धि के लिये घोड़े की हड्डियों की, क्षुद्र देवी-देवताओं भूत प्रेतादि के लिये गधे की हड्डियों की तथा शाबर मंत्रों की उपासना के लिये मिट्टी के मणिकों को बनवाकर उन्हें आग में पका लें। इन मनकों की माला उपयुक्त रहती है।

माला पिरोने के लिये व्यवस्था यह है कि जिस देवता का मंत्र सिद्ध करना

हो, उसी के अनुसार दिन देखकर पिरोया जाता है। गणपति मंत्र की उपासन के लिये चतुर्थी (शुक्ल पक्ष की) सूर्य मंत्र की उपासना के लिये सप्तमी—रविवार हो तो अधिक उत्तम, वैष्णव मंत्रों की उपासना के लिये द्वादशी, शिव मंत्र की उपासना के लिये त्रयोदशी को संध्या समय देवी मंत्र के अनुष्ठान करने के लिये अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी शुक्ल पक्ष की—में मंगलवार पड़ता हो उस दिन, पिरोनी चाहिए।

सूत्र के लिये यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर जिन कर्मों का जैसा रंग बताया गया है, उसी रंग के रेशमी धागे का प्रयोग करना चाहिए। सूत्र ब्राह्मण कन्या या सदाचारिणी स्त्री के द्वारा काता हुआ होना चाहिए। तीन सूत्रों (धागों) को मिलाकर बल दे फिर ऐसे तीन को और मिलाकर बल दे इस प्रकार नौ धागों से बने सूत्र से माला बननी चाहिए।

रुद्राक्ष के मनकों की माला के लिये विशेष व्यवस्था दी गई है। माला में पिरोये जाने वाले रुद्राक्ष एक से रहें अर्थात् पांच मुख के या चार मुख के मनके हैं तो सभी एक तरह के रहने चाहिए ऐसा नहीं कि कुछ पांच कुछ चार मुख के हैं, तो कुछ सात मुख के। मनकों का दो-दो का अभिमुखी जोड़ा बनाकर पिरोना चाहिए अर्थात् मुख से मुख मिलाकर पिरोयें। रुद्राक्ष के मुख के लिये यह चिन्ह है कि उसके छिद्रों में जिधर का हिस्सा मोटा होता है वह मुंह होता है और पतले वाला पुच्छा होता है।

धाय के फल जितना बड़ा रुद्राक्ष उत्तम, बेर के समान मध्यम और चने के समान आकार वाला अधम होता है, इससे भी पतला हीन अतएव दुःख देने वाला होता है। यदि सारे दाने एक से आकार वाले न हों तो पहले मोटा, फिर पतला फिर उससे पतला। इस प्रकार सर्पाकार संयोजन करना चाहिए। प्रत्येक मनके के बाद दक्षिणावर्त गांठ देनी चाहिए अथवा बिना गांठ की माला भी पिरोयी जा सकती है।

अत्यन्त मोटा, अत्यन्त पतला, फूटा हुआ, खिरा हुआ, हल्का द्विवदा हुआ, फटा हुआ, जीर्ण और पहले धारण किया हुआ रुद्राक्ष शुभ नहीं रहता।

गुरु के द्वारा दी गई माला सिद्धिप्रद रहती है।

मंत्र जप करते समय एकस्थ मन से श्रद्धा व देवता का रूप स्मरण करते रहना चाहिए। बीच में अनावश्यक अंग संचालन वार्तालाप या अन्य संकेतादि न करने चाहिएं। बीच में बोलना पड़े, तो उस माला को वहीं छोड़कर अंगन्यास, करन्यास कर फिर से माला जपना चाहिए छींक आने पर, गुप्तांग स्पर्श करने पर, मंत्र का जप न करना चाहिए। वैष्णव मंत्र के साधक को हरि स्मरण कर फिर मंत्र जप करना चाहिए। छींक आने पर अपान वायु निकलने पर, किसी गलीच आदमी से बात करनी

पड़े, तो माला को जितना जप किया है उसे वहीं छोड़कर आचमन, प्राणायम और न्यास कर जप करना चाहिए। कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, गधे को देखकर आचमन करना चाहिए यदि ये छू जायें तो स्नान कर कार्य करना चाहिए।

यदि संयोगवश असत्य बोला जाए तो रुद्र पुरुष का जप करें। खुले बालों से, एक वस्त्र या अधिक वस्त्र पहने हुए, नग्न सिर पर कोई कपड़ा पहनकर, चिन्ता अथवा क्रोध से आकुल चित्त, भूख से पीड़ित, किसी पशु पर बैठा हुआ, पलंग पर सोते हुए (बिस्तर बिछे में, बिना बिस्तर का पलंग श्मशान माना जाता है) नमाज पढ़ने जैसे आसन में बैठकर पैर फैलाकर उकडूं बैठकर जप न करें।

यों लंबे समय तक चलने वाले अनुष्ठानों में ब्रह्मचर्य का पालन दुष्कर रहता है इसलिये यदि मन कभी विचलित हो जाए तो अपनी पत्नी के साथ समागम करना दूषित नहीं माना जाता। इस दोष शमन के निमित्त पानी के दस घड़े सदाचारी ब्राह्मण के घर भरकर रख आये। जल से भरे दस घड़े ही रखने हैं। यह जल का नाप है।

जप के लिये कहा है कि जप अक्षरों की बार-बार आवृत्ति ही है। किसी भी मंत्र के सिद्ध करने का एकमेव मार्ग जप ही है। षट्कर्म से संबंधित प्रयोगों में प्रोष्ठ या कायिक जप ही पर्याप्त रहता है, मानसिक जप मुक्तिप्रद रहता है। चाहे कोई भी देवता हो वह जप से प्रसन्न एवं प्रकट होता ही है किन्तु क्षुद्र देवता बलिदान से प्रसन्न होते हैं।

आसन—आसन दो प्रकार के होते हैं—काम्य और नित्य। नित्य कर्म के लिये कुशा, चर्म और रेशम का आसन उत्तम रहता है। यह आसन साधक के दो हाथ चौड़ा और दो हाथ लम्बा चौकोर होना चाहिए।

काम्य कर्मों में व्याघ्र चर्म का आसन सर्वसिद्धि दायक होता है, ऊन का आसन रोगनाशक रहता है।

बीसा यंत्र—तंत्र ग्रंथों में बीसा यंत्र की महिमा बहुत बताई है। यदि हम एक भी यंत्र की साधना कर सकें और उसे सिद्ध कर लें तो हमारे जीवन का भौतिक पक्ष पूरा हो सकता है। जैसा हम जानते हैं कि यंत्र मंत्र की ही रूप कल्पना है। विचार अथवा अदृश्य शक्ति व्यक्त होने से पहले तरंगायित हुआ करती है। यह तरंगमयी अवस्था ही यंत्र के माध्यम से आराधना का विषय बनती है। यंत्रगत अंकों को मानक मानने पर इनका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। जैसे बीजगणित का सवाल करते समय हम पहले बीज लिखते हैं, फिर उन बीजों का मान रखकर संख्या में रूपान्तरित कर लेते हैं। ज्योतिष का सारा गणित पहले गणित के रूप में किया जाता है। फिर फलित करते समय हम उसके मान की व्याख्या किया करते हैं।

यंत्र में कोष्ठकों में लिखी जा रही संख्याओं का कोष्ठक नियत रहता है किन्तु उनके लिखने के क्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने से एक ही यंत्र विविध प्रकार के कार्य संपन्न कर दिया करता है। इसे चाल कहते हैं। हमारे व्यवहार में अथवा देवनागरी लिपि में पदों की रचना उत्तर से दक्षिण अथवा दक्षिणावर्त विधि रहा करती है और वाक्यों अथवा संहति की गति पूर्व से पश्चिम होती है।

विश्वलोक तंत्र में बीसा यंत्र के विषय में लिखा है कि यह राजवती विद्या है—इसे साधने में जितनी सावधानी रखनी पड़ती है, उतनी ही इसे गुप्त रखने में। रचना विधि में लिखा है कि चतुष्कोण में तीन रेखा उत्तर दक्षिण और तीन रेखा पूर्व पश्चिम लिखी जायें। इस प्रकार समानान्तर रेखाओं से नौ कोष्ठक बन जाते हैं। इनमें ऊपर से पंक्तिबद्ध करते हुए पहाड़े की तरह नहीं, 8, 9, 3 (ऊपर वाली पंक्ति में) 2, 7, 11 दूसरी—मध्य पंक्ति में (उत्तर दक्षिण) अन्तिम पंक्ति में 10, 4, 6 लिखें। इस प्रकार नौ कोष्ठकों में बीसा यंत्र लिखा जाता है।

यंत्रों में मंत्र के समान जप नहीं किया जाता। यंत्र को बार-बार लिखने से ही पुरश्चरण संपन्न होता है। संख्यापरक यंत्रों में किसी अन्य मंत्र का जाप करते हुए भी लेखन किया जाता है। लिखते-लिखते अन्तिम यंत्र की पूजा कर उसे स्थापित किया जाता है।

बीसा यंत्र जनार्दन इसका स्वरूप है, पुरश्चरण करते समय अनेक प्रकार के विघ्न और अनुभूतियां होती हैं। एकाग्र मन से श्रद्धापूर्वक एवं विधि विधान सहित करते हुए कभी चिट्-चिट् शब्द सुनाई देता है, कभी दिवंगत पूर्व पुरुषों का दर्शन होता है, कभी हमारे अंगों का फटना, उनका भारी हो जाना, अप्सराओं के दिव्य सौन्दर्य का दर्शन, गंधर्वों का गान सुनाई देना, बिजली चमकना, घटाओं का छाना, पानी से धरती का घिर जाना, भयानक आकार वाले जीवों का दिखना—इस प्रकार के अनेक अनुकूल और प्रतिकूल दृष्टान्त हुआ करते हैं किन्तु साधक इस सबसे प्रभावित हुए बिना यदि साधना करता रहता है तो उसको सफलता मिलती है।

साधना विधि—अच्छा दिन देखकर किसी तीर्थ स्थान पर, सिद्धपीठ में, पहाड़ या नदी तट के एकांत में यह प्रयोग करें। पुरश्चरण करने से पहले जो कुछ भी किया जाता है, वह अन्य पुस्तक में से देख लेना चाहिए। इसमें ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि जिस स्थान पर प्रयोग करना है, उस स्थान पर सफाई आदि कर वहां के स्थानाधिपति देवताओं को विनयपूर्वक वहां से हट जाने तथा अन्य विघ्नकारक देवताओं एवं दुरात्माओं को अपसारित कर, नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुंह करके बैठ जाएं। एकांत में अकेला बैठकर स्वस्थ

प्रसन्न मन से अत्यन्त विश्वासपूर्ण भावना से युक्त होकर कुशा के आसन पर बैठ जायें। यंत्र के स्वरूप की अपने मन में—हृदय प्रदेश में—कल्पना करें और यह सोचें कि वह स्वयं यंत्रमय है। मंत्र प्रयोग में जो कार्य न्यास का होता है, उसी स्थिति को इस कल्पना से प्राप्त किया जाता है।

आसन पर बैठकर अपनी बाईं तरफ हाथ जोड़कर 'गुरवे नमः' बोलकर गुरु का स्मरण करते हुए प्रणाम करें। दाहिनी तरफ 'गणपतये नमः' बोलकर विघ्नविनाशक गणपति को प्रणाम करें, फिर सामने की तरफ हाथ जोड़कर प्रजापति को प्रार्थना करें—

प्रजानाथ नमस्तस्तु प्रजापालन तत्पर !
प्रसन्नो भव मे देव यंत्रसिद्धि प्रयच्छ में (1)
ये केचित्प्रेत कूष्मांडा भैरवा भूत-नायकः।
ते सर्वे विलयं यान्तु प्रजानाथ नमो स्तुते (2)
प्रयच्छ सिद्धिमतुलां यंत्रराजात्सुदुर्लभाम् ।
त्वत्प्रसादादह नाथ कृतकृत्यां व्रजे परम् (3)

हे प्रजापालनपरायण प्रजानाथ ! आपको प्रणाम ! हे देव ! आप मेरे पर प्रसन्न होइये और मुझे यंत्र साधना में सफलता प्रदान कीजिए (1) हो कोई भी प्रेत, कूष्माण्ड भैरव और भूतों के स्वामी हैं। वे यहां से दूर भाग जाएं। आपकी कृपा से, हे प्रजानाथ आपको नमस्कार। (2)

हे भगवान ! मुझे इस यांत्रिक प्रयोग में अतुल सिद्धि प्रदान करिये, मैं आपकी कृपा से इस प्रयोग में सफल होकर अपने प्रयोजन में कृतकृत्य हो जाऊं (3)

इस प्रकार प्रार्थना कर पहले से तैयार किये भोजपत्र के एक सौ आठ टुकड़े लेकर उस पर यंत्र को लिखना प्रारंभ करें, यंत्र लिखने के लिये स्याही चंदन, लाल चंदन, कस्तूरी, कपूर, कुंकुम, अगरु, देवदास, कुष्ठ, इन सबको पीस-घिसकर बनाई गई अष्ट-गंध से चमेली की कलम से लिखे। लिखते समय 'ओम् ह्रीं ओम्' इस तार पुटित माया बीज का जप करते रहना चाहिए।

इन लिखे हुए यंत्रों को सामने बिछाकर पंचोपचार से पूजा करें। इसमें धूप काले अगरु की दी जायेगी। उसके पश्चात पुष्पों की सुगंध से सुवासित तेल का दीपक जलाकर वरुण देव को अर्पित करें। यह दीपक पश्चिमाभिमुख होना चाहिए अर्थात् दीपक की बत्ती पश्चिम की तरफ रहे। स्मरण रहे इस दीपक में धूप बत्ती काम नहीं देगी क्योंकि फूल बत्ती उर्ध्वमुखी होती है।

दीपक पुष्पादि से पूजित करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करें—

भो-भो जलेशदसन सर्वकार्य प्रसाधक !
निर्विघ्न कुरू मे कार्य हर विघ्नान् नमोस्तुते।।

हे जलस्वरूप वरुणदेव ! आप सारे कार्यों में सिद्धि देने वाले हैं, आप मेरे कार्य को निर्विघ्न पूरा कीजिये तथा बाधाओं को दूर करिये, आपको नमस्कार है।

यह प्रार्थना कर दीपक वरुण देव के निमित्त रख दें। यह बोलते हुए--'भो वरुण ! इमं दीपं तुभ्यमहं प्रददे।'

यंत्र को सम्मुख रखकर मंत्र जप करने की विधि संपन्न करें। सबसे पहले विनियोग करें–

अस्य श्री विंशांक यंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः (अनुष्टुप् छन्दः) विंशांका भवानी देवता ओम् बीजम् हीं शक्तिः श्रींकीलम् मम चतुर्विधि पुरुषार्थ सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

विनियोग हाथ में जल लेकर ऊपर लिखे वाक्य को बोलकर धरती पर छोड़ देने की क्रिया है। विनियोग का अर्थ होता है क्रियमाण कार्य को किस निमित्त किया जा रहा है अर्थात् हमारा यह जप किस रूप में परिणमित होगा ? क्रियमाण कार्य का विनियोजन करते हैं, तो उस प्रयोग की सारी सूचनाओं का विवरण देना भी व्यावहारिक होता है।

विनियोग के पश्चात् न्यास किया जाता है। ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, विशांका भवानी देवतयै नमः हृदये, ओम् बीजाय नमः गुह्मा हीं शक्तये नमः पदयोः श्रीं कीलकाय नमः नाभौः

विशेष—न्यास में ध्यान रखने की बात है कि शिर में जहां आता है वहां एक मध्यमा उंगली से ही ब्रह्मरंध्र का स्पर्श किया है, शिखा में मुष्टिका बांधकर स्पर्श किया जाता है, मुख में और हृदय में अंगुष्ठ कनिष्ठा को मिलाकर स्पर्श किया जाता है, गुह्य प्रदेश और कवच में चारों उंगलियों का प्रयोग होता है अस्त्राय फट् में दक्षिणावर्त विधि से हाथ को अपने शरीर के चारों तरफ घुमाकर ताली बजाई जाती है।

करन्यास—ओम् अंगुष्ठाभ्याम् नमः हीं तर्जनीभ्यां नमः श्री मध्यमाभ्यां नमः, क्लीं अनामिकाभ्यां नमः, मम सर्ववांछित देहि देहि कनिष्ठकाभ्यां नमः स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि षडंगन्यास—ओम् हृदयाय नमः हीं शिरसे शिरसे स्वाहा, श्रीं शिरवायै वषट्, क्लीं कवचाय हम् मम सर्ववांदित देहि देहि नेत्रत्रयाय वौषट, स्वाहा अस्त्राय फट्। अस्सी दिन तक प्रतिदिन हजार-हजार जप करने से अस्सी हजार जप

करने पर पुरश्चरण संपन्न होता है।

अच्छा यह रहे कि एक सौ आठ यंत्रों को एक स्थान पर तह कर रखता जाए। पूर्णाहुति के दिन या उसके बाद इन भोज पत्रों को गेहूं के आटे की गोलियां में रखकर किसी जलाशय में जाकर मछलियों को खिला दिया जाता है। वैसे भी जो वस्तु इस प्रकार तैयार की जाती है, उसे या तो नित्य किया जाता है, या किसी नदी कूप में समर्पित कर दिया जाता है।

जप की दशांश मात्रा में हवन किया जाता है। पंचखाद्य पंचामृत में मिलाकर हवन करते हैं। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन किया जाता है अर्थात् आठ हजार आहुति आठ सौ तर्पण, अस्सी मार्जन और आठ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। मार्जन न कराया जाए तो अस्सी ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

इस प्रकार पुरश्चरण करने पर यह यंत्र सिद्ध हो जाता है। स्मरण रखने की बात है कि जिस व्यक्ति को कोई भी मंत्र या यंत्र सिद्ध हो जाता है वह उसके द्वारा अभीष्ट कार्य करने के लिये अधिकृत हो जाया करते हैं। किन्तु इसे एक बार उपयोग में लेने के लिये अतिरिक्त जप करना चाहिए अन्यथा उसकी संचित निधि में से क्षय होने लगता है और शनैः शनैः प्रभाव नष्ट होने लगता है। इसलिये जब भी किसी के लिये काम्य कर्म करना हो, अतिरिक्त जप कर लेना ही श्रेयस्कर रहता है। एक बार सिद्धि करने के पश्चात् कम मात्रा में कर लेने पर ही कार्य संपन्न हो जाता है।

पुरश्चरण करने के बाद इसी से षट्कर्म करने के लिये विविध परिवर्तनों से यों किया जाता है—आकर्षण करने के लिये—

कुम्हार से बनाये गये खप्पर (बड़ी सराई) में इस यंत्र को गोरोचन अथवा चन्दन से लिखकर उस शराब को उलटकर अपने बायें पैर से दबाकर—

'ओम् ह्रीं श्री क्लीं....आकर्षय आकर्षय स्वाहा' इस मंत्र की एक माला जपनी चाहिए। खाली स्थान में उस व्यक्ति के नाम के आगे 'म्' जोड़कर बोलना चाहिए। वैसे यदि पुरश्चरण विधिपूर्वक हो गया और साधक आश्वस्त हो गया है कि उसे यह यंत्र सिद्ध हो चुका है, तो एक दिन यह प्रयोग करने पर ही सफलता मिल जाती है, अन्यथा एक दिन करके इस पात्र को ऊंचा उठाकर रख दे, फिर इसी पात्र को प्रयोग में लेता हुआ तब तक प्रतिदिन करता रहे जब तक अभीष्ट सिद्ध न हो।

आकर्षण का अर्थ होता है खिंचना। इस प्रयोग से वे लोग भी आ सकते हैं

जो विदेश गये हैं। जो लोग घर छोड़कर चले गये हैं अथवा खो गये हैं या किसी बात को लेकर मनमुटाव के शिकार हो गये हैं उनके लिये यह प्रयोग अनुकूल रहता है।

शत्रुनाशन के लिये लोहे की कलम से धतूरे के रस से कागज पर लिखे तब मूल मंत्र में इस तरह परिवर्तन करके लिखे—'ओम ह्रीं श्रीं क्लीं दह दह स्वाहा' (खाली स्थान में फिर उस व्यक्ति का नाम 'म्' जोड़कर लिखे)।

इस यंत्र को अग्नि में तपाने से शत्रु के विविध प्रकार के रोग, जैसे ज्वर, दाड़, ददोड़े हो जाते हैं, ध्यान रहे यह तपाया जाने वाला कागज जल न जाए, जल जाने पर उस व्यक्ति की मृत्यु की संभावना हो जाती है।

उच्चाटन में धतूरे के रस से लोहे की कलम से लिखकर श्मशान में, आंधी में या गहरे वन में अथवा शिव की मूर्ति में बांध दें। यंत्र उसी प्रकार लिखकर वैसे ही नाम लिखकर मूल मंत्र 'ओम ह्रीं श्रीं क्लीं उच्चाटय' प्रकार लिखकर वैसे ही नाम लिखकर मूल मंत्र 'ओम ह्री श्रीं क्लीं उच्चाटय उच्चाटय स्वाहा' खाली स्थान पर अभीष्ट व्यक्ति का नाम लिखें। ध्यान रहे ऐसे प्रयोगों में नाम व यंत्र लिखते समय क्रोधाविष्ट होकर लिखा जाता है।

स्तंभन के लिये हल्दी को घिसकर उस पानी में नमक मिलाकर भोजपत्र पर यंत्र को लिखे। इस यंत्र को दो पत्थरों के बीच रखकर खड्डे में गाड़ दे। इस प्रयोग में जिस व्यक्ति का स्तंभन करना है उसका नाम मंत्र के पश्चात् लिखे। क्रम इस प्रकार का रहेगा—पहले यंत्र, फिर मंत्र, फिर नाम।

विद्वेषण के लिये श्मशान के कपड़े पर उल्लू के पंख से धतूरे के रस से यंत्र को लिखे। इस प्रकार दो यंत्र (एक यंत्र एक व्यक्ति के नाम का दूसरा दूसरे के नाम का इस प्रकार दो यंत्र लिखकर उनको विमुख करके रखे) फिर बीसा यंत्र के विविध लेखन प्रकार देख ऐसे और भी अनेक बनाये जा सकते हैं। यंत्र निर्माण का एक सामान्य सूत्र है कि जितने का यंत्र बनाया जाना है और जितने कोष्ठकों का बनाया

८	१	३
२	७	११
१०	४	६

बीसा यंत्र लिखने की अन्य विधियां :

२	९	२	७
६	३	६	५
८	३	८	१
४	५	४	७

(यंत्र संख्या 1)

६	८	२	४
४	२	८	६
८	६	४	२
२	४	६	८

(यंत्र संख्या 2)

१	८	२	८
५	६	३	६
७	२	९	२
७	४	५	४

(यंत्र संख्या 3)
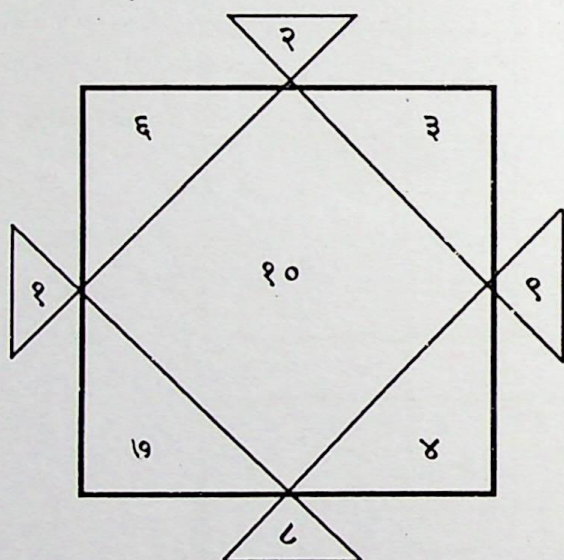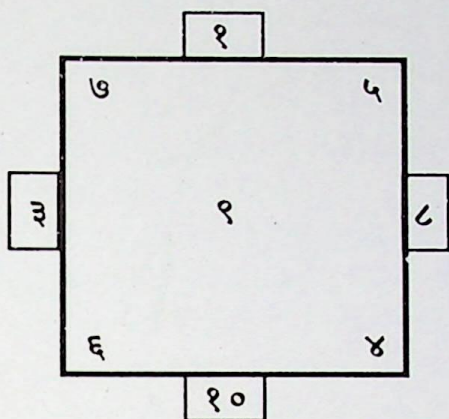
४	२	८	६
६	८	२	४
२	४	६	८
८	६	४	२

(यंत्र संख्या 4)

(यंत्र संख्या 5)

(यंत्र संख्या 6)

(यंत्र संख्या 7)

(यंत्र संख्या 8)

४	२	८	६
६	८	२	४
२	४	६	८
८	६	४	२

(यंत्र संख्या 4)

(यंत्र संख्या 5)

१
७
५
३
९
८
६
४
१०
(यंत्र संख्या 6)
१
४
८
३
१०
७
(यंत्र संख्या 7)
२
६
९
१
४
७
९
३
(यंत्र संख्या 8)
८
१०
२
५
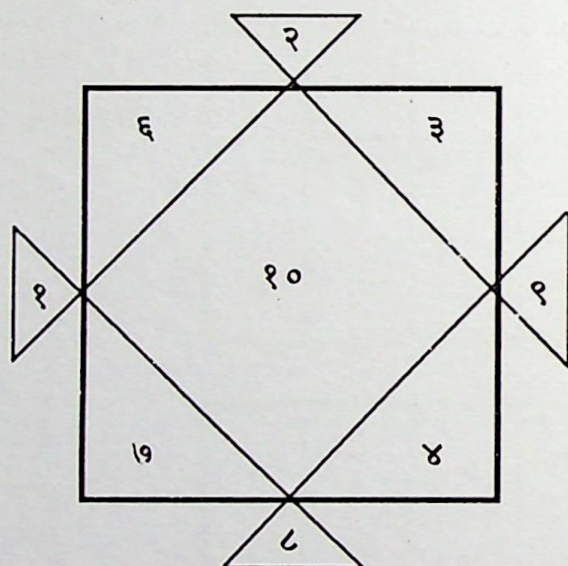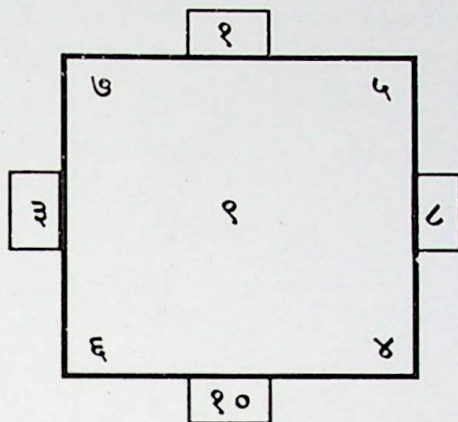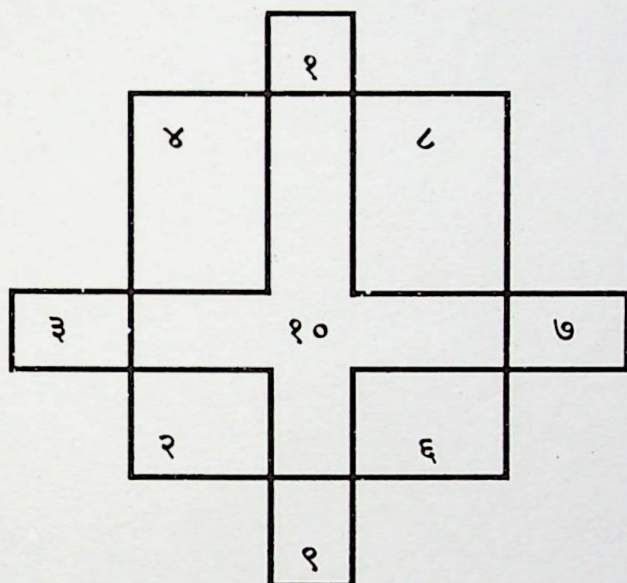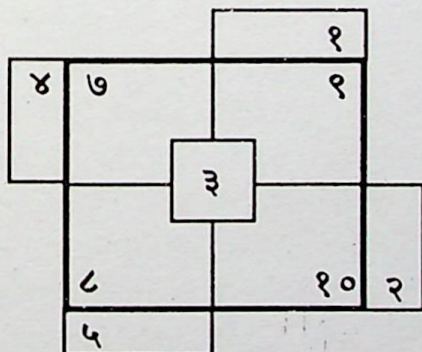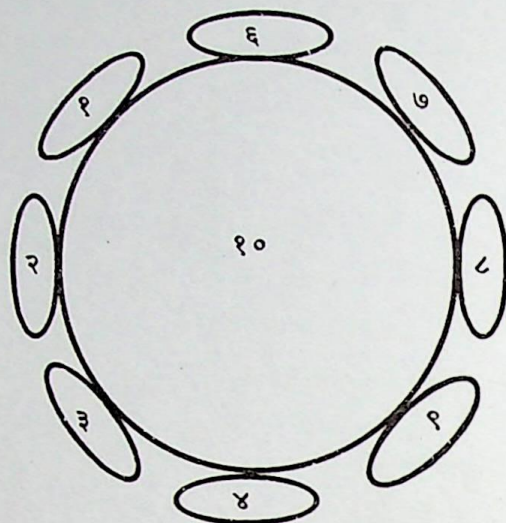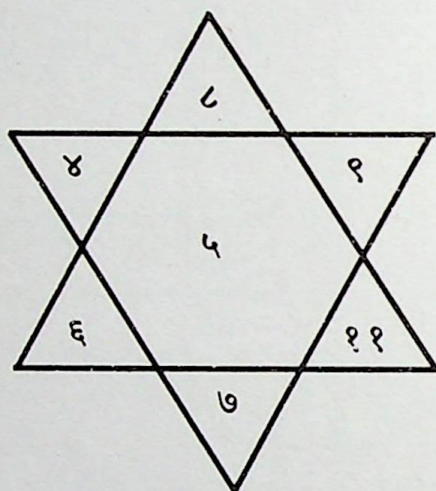
(यंत्र संख्या 9)

(यंत्र संख्या 10)

जाना है उस मूलांक को कोष्ठकों की संख्या में गुणा कर दे जैसे बीस के अंक का यंत्र बनाना है और तीन कोष्ठकों का बनाना है 20×3=60 और चार कोष्ठकों का बनाना हो तो 20×4=80 यही सूत्र गणितीय पद्धति पर चलता है चतुरसत्र = चौरस या त्र्यस्त = त्रिवर्गी गति से इसी सिद्धांत पर यंत्र निर्माण किया जाता है। दूसरे स्तर पर ध्यान रखना होता है उन संख्याओं का जिनका क्रमिक योग 60 या 80 ही हो। कमिक्र योग से मतलब एक से नौ तक की संख्याओं का योग 45 होता है और ये नौ कोष्ठकों में आती हैं, तो इनमें 15 का यंत्र तीन कोष्ठकों में बनाया जा सकता है, किन्तु बीसा का यंत्र बनाने के लिये इनमें से या तो किसी संख्या को छोड़ना पड़ेगा या किन्हीं संख्याओं को एक से अधिक बार काम में लेना होगा। जैसे यंत्र

संख्या एक में अस्सी का योग बिठलाने के लिये दो से आठ तक की संख्याओं को दो-दो बार लिखा गया और तो चौदह कोष्ठकों में दो से आठ तक के अंकों का योग सत्तर और एक व नौ एक बार आने से जोड़ दस–इस प्रकार अस्सी। यह अस्सी का योग जिन-जिन क्रमिक संख्याओं के जोड़ने से संभव हो सकता है, उन्हीं से बीसा यंत्र बनाया जा सकता है।

यंत्र संख्या दो में दो, चार, छः और आठ अंकों से ही बनाया गया है तथा इन अंकों को चार-चार बार लिखने से बीस का यंत्र बनाया गया है। तीसरा और चौथा यंत्र पहले और दूसरे यंत्रों की ही पंक्ति अथवा यति बदलकर बनाये गये हैं। इस प्रकार एक ही योग के यंत्र को अनेक संख्या योजनाओं से बनाया जा सकता है और प्रत्येक संयोजन का क्रम परिवर्तन कर चौसठ रूप दिये जा सकते हैं। यह बात थी सोलह कोष्ठकों से बनने वाले यंत्रों की।

बीसा यंत्र के ही क्रम में यंत्र 5 से 10 तक के यंत्र मूलतः नवकोष्ठक यंत्र ही हैं। जिनमें क्रमशः 9, 10, 3, 10, 5 को केन्द्रस्थ रखा गया है तथा क्रमशः 5, 2, 5, 6, 5 और 10 को छोड़ दिया गया है।

इसके साथ ही इस संयोजन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन संख्याओं का योग क्रमशः 50, 53, 46, 50 और पचास होता है जबकि कोष्ठकों में लिखे जाने पर इन नौ संख्याओं का योग साठ होता है। संख्याओं में इस प्रकार के परिवर्तन के पीछे एक उद्देश्य रहा है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये यंत्र की आकृति में भी परिवर्तन कर दिया गया है। यह परिवर्तन ऐसे ही हैं, जैसे किसी सौम्य कार्य के लिये प्रयोग की जा रही किसी वस्तु को रूप एवं आकार भी सौम्य ही दिया जाए तथा उसे बनाने के लिये पदार्थ भी तदनुसार ही लिखे जायं।

5 वां यंत्र भूपुर की आकृति में त्रिभुजों की रचना को आधार मानकर बनाया गया है। छठा यंत्र भूपुर में दिशाओं और विदिशाओं को संकेतक मानकर रचा गया है, सातवां यंत्र चौपड़ जैसी आकृति पर बनाया गया है। पुराने जयपुर का निर्माण इसी आकृति पर किया गया है। आठवां यंत्र स्वास्तिक को आधार बना रचा गया है। नौवां यंत्र अष्टदल कमल का प्रतीक है और दसवां दो त्रिभुजों के परस्पर निबद्ध होने का, इनमें कमल, स्वास्तिक, षट्कोण, भूपुर आदि का प्रतीकार्थ ही समझते हैं।

नौ या सोलह के कोष्ठक में लिखे जाने वाले यंत्र की चाल में अन्तर करने से ही षट्कर्म सम्पन्न हो जाते हैं, पर इन आकृतियों से बनने वाले यंत्रों का प्रयोजन सीमित हो जाता है और यह सीमित होना शक्ति को केन्द्रित करने का सूचक है, शक्ति की कमी होने का नहीं। जैसे आकर्षण–वशीकरण के लिये अष्टदल कमल से बनने वाला, ऋद्धि-सिद्धि एवं शान्ति–पुष्टि के लिये स्वास्तिक की आकृति का

तथा स्तंभन विद्वेषण के लिये चतुर्भुज आकृति वाला यंत्र अधिक उपयुक्त रहता है।

सामान्यतया इन अंक यंत्रों में प्रयुक्त पद्धति अनेक आयामों पर आधारित रहती है, जिसमें यंत्र की रेखा गणितीय रचना एवं तदनुसार कुल अंक योग केन्द्रस्थ अंक, अंकों का प्रवाह तथा अंकों का अनुक्रम ये सारे आधार मिलकर ही हमारे उद्देश्य को निरूपित किया करते हैं।

उदाहरण के लिये छठे यंत्र में 10 को केन्द्र में रखा गया है, यह अंक दिशाओं के क्रम में अनन्त का है और दो अंक छोड़ा गया है, जो दिक् क्रम में आग्नेय कोण का है। इन संख्याओं का योग 53 है, इसीलिये तिरपन अक्षर से बनने वाले मंत्र का काम यह यंत्र करेगा। इनके सारे रहस्य गुरूमुख से ही गम्य हैं।
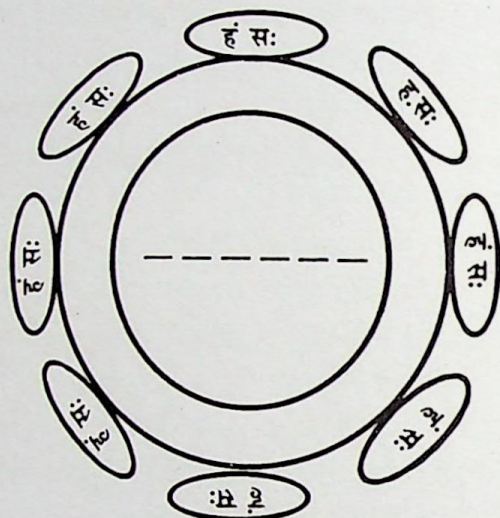
(यंत्र संख्या 11)

विधि—जैसा इस यंत्र का नाम है वैसा ही फल है। पहले इस यंत्र को साधित कर लें, फिर सर्पभय की स्थिति में इस यंत्र को कपूर, केशर, कस्तूरी, गोरोचन से अथवा धतूरे के रस से लिखकर–खाली स्थान में जिस व्यक्ति पर प्रयोग करना हो, उसका नाम लिखकर तांबे के ताबीज में गले में पहनाने से सर्पभय नहीं रहता है। यदि किसी को सर्प काट खाए तो हरड़, शहद, काली मिर्च, तेजपात, मैनफिल, हिंगु को पीसकर कांसी की थाली में इस यंत्र को लिखे और वच ओम हूं हूं सं स्वः हं सः इस मंत्र की पांच माला जपकर इसे धोकर नाक से पानी पिला दें।

यंत्र और मंत्र सिद्ध होने पर ये औषधियां अपना अच्छा प्रभाव दिखलाती हैं।

विधि—इस विमोचन यंत्र को कपूर और कुंकुम से लिखकर भोजपत्र को सामने रखकर पंचोपचार से पूजन करें तथा राजेन्द्र मोक्ष के पांच या ग्यारह पाठ कर किसी ताबीज में रखकर गले या हाथ में बांध लेने से मुक्त हो जाता है। यहां मुक्त
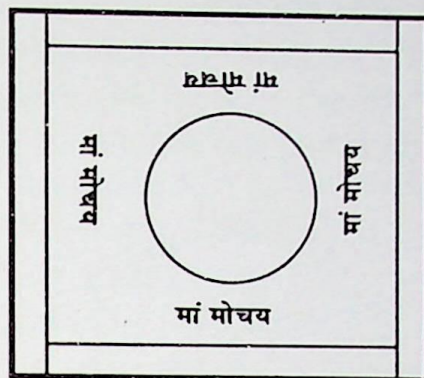
(यंत्र संख्या 12)

होना व्यापक अर्थ में लिया गया है। यदि दीर्घकाल से कोई व्यक्ति रोग ग्रस्त है या ऋण ग्रस्त है या कारागृह में है, तो उसे पर्याप्त मात्रा में इस यंत्र के प्रयोग करने से लाभ मिलता है।

विधि—वैसे यह यंत्र सांसारिक मोह से मुक्ति देने के लिये उपयुक्त रहता है और किसी कागज पर स्याही से अथवा भोज पत्र पर गौरोचन चन्दन से प्रतिदिन एक सौ आठ बार लिखते रहने से वैराग्य का उदय होता है किंतु इसका प्रयोग मदिरापान, जुआ खेलने, दुर्जनों की संगति एवं अन्य किसी प्रकार के दुर्गुणों को दूर करने के लिये भी किया जा सकता है। इस यंत्र को बहुत छोटे तांबे की तख्ती पर इसी आकार में काटकर ये शब्द लिखने तथा खाली स्थान पर अभीष्ट व्यक्ति का नाम लिखकर इस पर इक्कीस दिन तक गंध, धूप, दीप नैवेद्य पुष्प से पूजा कर गले में

मे	षे	र	क्त	द	ये	त	या
क	जि	ज	त	द	नी	वि	नः
छ	दे	वी	य	मं	च	ते	ष
द्रे	ष्टि	वा	मु	क्ति	ना	या	त्र
त्र	या	ना	क्ति	मु	वा	ष्टि	ट्रे
ष	से	च	मं	य	वी	दे	छ
नः	वि	नी	द	त	ज	जि	क
या	त	ये	द	क्त	र	षे	मे

(यंत्र संख्या 13)

पहनाने से दुर्व्यसनों से अरुचि हो जाती है।

इस यंत्र को अंगूठी में बनवाकर तथा उस पर ओपल जड़वाकर पहनाने से लाभ होता है पर यह ध्यान रखना चाहिये कि ओपल अधिक वजन का न हो अन्यथा यह विरक्ति अधिक उग्र होने की संभावना हो सकती है।
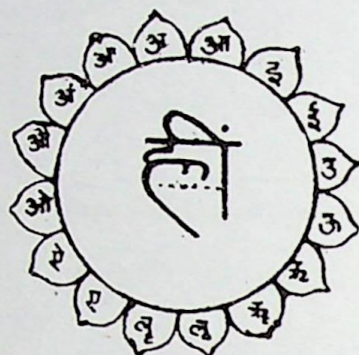
(यंत्र संख्या 14)

विधि—इस यंत्र को गुड़ से घी में बने गुलगुले (पूये) पर घी से लिखे, खाली स्थान में उस व्यक्ति का नाम लिखे, जो किसी के चंगुल में अथवा कारागार में फंसा हुआ हो, फिर उस पूये की पंचो-पचार से पूजा कर ही इस बीज मंत्र की पांच माला जप करके अभीष्ट व्यक्ति को खिला दे। इस प्रयोग से सातवें या सत्ताइसवें दिन में बंदी छूट जाता है।

विशेष—यद्यपि प्रथम दृष्टि में ये प्रयोग अविश्वसनीय से लगते हैं क्योंकि जिस व्यक्ति को आजन्म कारावास का दण्ड मिला हुआ है उस पर यह प्रयोग करने से वह मुक्त किस प्रकार होगा ? यह तथ्य व्यवहारिक दृष्टि से इन प्रयोगों के प्रश्न चिन्ह लगाता है किन्तु जिन लोगों को यह प्रयोग सिद्ध है, वे लोग करें
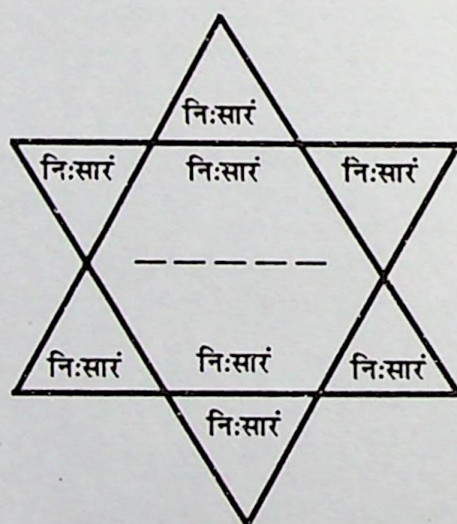
(यंत्र संख्या 15)

अथवा कारागृह भोग रहा व्यक्ति स्वयं पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ करे, तो चमत्कारी प्रभाव प्रकट हो सकता है। प्रभु कृपा का विधान विचित्र है, वह कृपा करने लगे तो असंभव नाम की कोई चीज है ही नहीं। जिन लोगों ने अपने जीवन में अशरण-शरण प्रभु को शुद्ध अन्तःकरण से पुकारा है। उनको उसकी अकारण करुणा और अहेतुकी कृपा का दर्शन हुआ है। वे जानते हैं कि मानवी विधान उसकी दृष्टि में कुछ भी नहीं है। वे कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम अर्थात् करने, न करने अथवा दूसरी तरह करने में समर्थ है। प्रश्न इन प्रयोगों की सत्यता का नहीं, हमारी पात्रता और सामर्थ्य का है। पत्थर की अभेद्य चट्टान के नीचे तरल जल की शीतल धारा हुआ करती है। क्रूर और सिंह में भी स्नेह एवं दया की कोमलता रहती है किन्तु प्रश्न है उस सतह तक पहुंच पाने का। जो लोग उस स्तर को प्राप्त कर सकते हैं उनके लिये यह असंभव नहीं, इसलिये यह या अन्य प्रयोग भी साधक के साहस, प्रयास और विश्वास के विषय हैं।

विधि—ऊपर लिखित यंत्र परकृत बंधन या राज्य कृतबंध से मुक्त होने के निमित्त है। इस यंत्र को गोरोचन और कुंकुम से भोजपत्र पर लिखा जाता है। मध्य में लिखे गये ह्री बीज में...इस प्रकार के चिन्ह की जगह उस व्यक्ति का नाम लिखा जायेगा जो बन्धन में पड़ा है। इस यंत्र की पूजा कर, किसी नदी से लाये जल में इसे उबाला जाय और जिस व्यक्ति को मुक्त कराना है, उसे खिला दिया जाये।

(यंत्र संख्या 16)
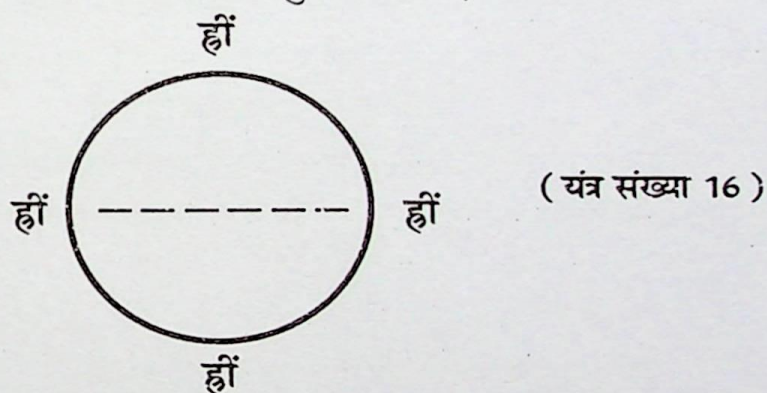
विवाद में विजय के लिये इसे पूजित कर समुद्र में जाने वाली नदी में बहा दिया जाए। ऐसा तीन सप्ताह तक करना चाहिये।

विधि—यह विजय यंत्र द्यूत-विजय के लिये है, पर इसका उपयोग वहां भी किया जा सकता है, जहां छल कपट के द्वारा किसी से हानि होने की संभावना हो, किसी मुकद्दमे या अन्य राज्य कार्यों में विजय प्राप्ति के लिये इसका प्रयोग उतना प्रभावशाली नहीं रहता।

इसे लिखने के लिये रवि या मंगलवार के दिन कड़वे तेल से उपाड़े (बनाये

गये) काजल को पानी में घोलकर स्याही बना ले, कौवे की पंख से इरण्ड—जिसके अण्डी लगती है—के पत्ते पर लिखें। यह यंत्र रात्रि के समय एकान्त स्थान में बैठकर लिखा जाता है फिर इसे पूजित कर लपेटकर अपनी जेब में रख लिया जाता है अथवा टोपी में रख लिया जाता है। पत्ता होने के कारण इसका सूखना स्वाभाविक है इसलिये अधिक समय तक यह रक्षित नहीं हो सकता, अपने आप बिखरकर गिर जायेगा इसलिये अधिक जीर्ण होने पर इसे जल में विसर्जित कर नया यंत्र बना लें।

अन्तर्वत्नी रक्षा यंत्र
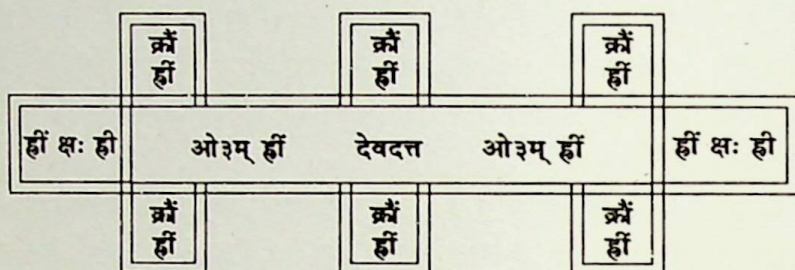
(यंत्र संख्या 17)

इस यंत्र में लिखा गया मंत्र ही मूल मंत्र है। बत्तीस अक्षर के मंत्र को ही अनुलोम-विलोम विधि से चौसठ अक्षरों के कोष्ठकों में लिखा जाता है। टौंक के विख्यात तांत्रिक पं. स्व. दामोदर प्रसाद जी ने इस यंत्र का उद्धार किया था।

ज्वर नाशन यंत्र

यह यंत्र उन गर्भवती स्त्रियों के लिये उपयुक्त है जो पितरों के साथ शापवश या अन्य किसी कारण से गर्भपात एवं प्रसव के समय असह्य कष्ट भोगा करती हैं।
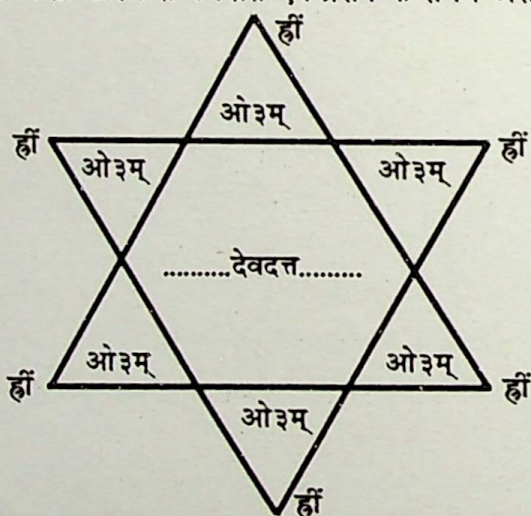
(यंत्र संख्या 18)

गर्भ और योनि व्याधियों पर यह अच्छा काम करता है तथा बालक की रक्षा भी करता है।

विधि—अन्तर्वली रक्षा यंत्र को भोजपत्र पर चमेली की कलम से धतूरे के रस से लिखकर पंचोपचार से पूजन करें। यंत्र में जहां देवदत्त लिखा है, वहां उस स्त्री का नाम लिखे, जिसके लिये यह यंत्र बनाया जाता है। फिर अपने इष्ट देवता का स्मरण करके उस स्त्री के गले में किसी ताबीज में रखकर बांध दें।

त्रिपुर भैरव यंत्र

विधि—ज्वर नाशन यंत्र को नागर पान कर कपूर, केसर, कस्तूरी चन्दन से लिखकर पूजा करें, 'ओम् ह्रीं' इस मंत्र को एक सौ आठ बार जपकर रोगी को खिला दे। मध्य में पीड़ित व्यक्ति का नाम लिखे। हमारे चिकित्सा शास्त्र में ज्वर को सर्वाधिक फैलने वाली व्याधि माना है। यह आगन्तुक भी है, संसर्गज भी है और नैसर्गिक भी। इसके अनेक प्रकार हैं और अनेक कारण, मलेरिया जैसे ज्वर का उपचार यहां यंत्र विधि और मार्जन विधि (झाड़ने) से किया जाता था। जिस मलेरिया के लिये कुनैन जैसी तीव्र और उष्ण-वीर्य औषधि दी जाती हैं, वह सामान्य-सी चिकित्सा से समाप्त हो जाता है। यह आश्चर्य और चुनौती का विषय है। आज भी इस प्रकार के यंत्र बनाने वाले लोग हैं, जो मलेरिया, एक दिन छोड़कर, दो दिन छोड़कर या तीन दिन छोड़कर आने वाले ज्वर के लिये अचूक उपचार यंत्र के माध्यम से कर दिया करते हैं।
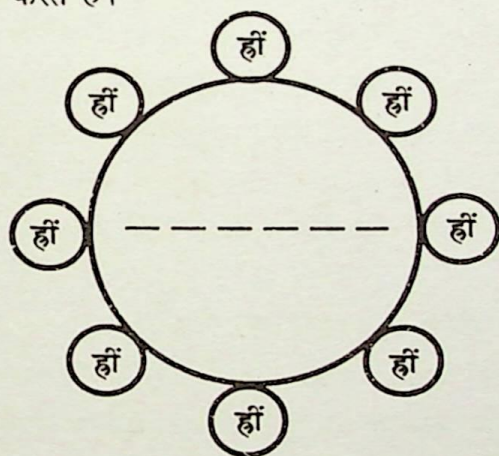
(यंत्र संख्या 19)

यद्यपि मैंने ज्वर-नाशन के लिये किसी यंत्र की साधना नहीं की, पर इससे उपचार होते हुए देखा है। चार-पांच वर्ष पहले रेनवाल कस्बे में एक सेठ मलेरिया निवारण के यंत्र बनवाकर लाये थे और उन्होंने परोपकार के लिये ही उन यंत्रों को बांटा था तथा उनसे अनेक ज्वर ग्रस्त लोगों को लाभ हुआ था। सामान्यतः रविवार

के दिन अपने आप गिरे हुए पीपल के पत्ते पर उल्टी वर्णमाला स्याही से लिखकर बांध देने से भी मलेरिया जैसा स्वर नहीं आया करता, ऐसे ही अनेक उपचार यंत्र शास्त्रों में दिये गये हैं। आवश्यकता है इनको व्यवहार में लाने की। इन या ऐसे यंत्रों के संबंध में यह तथ्य याद रखना चाहिये कि ये उपचार ज्वर के हैं क्षय या अन्य रोगों के नहीं। क्षय में ज्वर एक लक्षण के रूप में हुआ करता है, ऐसे ही आन्त्रज्वर (टाइफाइड) में भी ज्वर एक उपलक्षण रहता है। अतः ऐसे ज्वरों की चिकित्सा इन प्रयोगों से नहीं होती।

विधि—त्रिपुर भैरव यंत्र बालकों की या अन्य प्रेतावेश से ग्रस्त लोगों की रक्षा के लिये किया जाता है, यदि इस यंत्र को साधित कर किसी व्यक्ति को दिया जाए तो इससे मानसिक अशान्ति और व्यग्रता दूर होती है। विशेषतया नवजात शिशु को गले में पहनाने से लाभ मिलता है।

मेरा अपना अनुभव और विचार है कि बालक शुद्ध और अल्पशक्ति होने के कारण बाह्य प्रभावों से तुरंत प्रभावित हो जाया करता है। ये प्रभाव प्रेतादि के ही हों, यह आवश्यक नहीं, पर उनके लक्षण इस प्रकार के भी होते हैं। अनेक बार ऐसी व्याधियां भी हो जाया करती हैं, इसलिये यह या इस निमित्त किये जाने वाले अन्य यंत्रों में से कोई एक बालक के गले में बांध देना हितकर रहता है।

इस यंत्र को भोजपत्र पर कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, केसर, चन्दन से लिखकर पूजा कर फिर इसे तांबे, चांदी या त्रिलोह के ताबीज में रखकर बालक के गले में पहना दें। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के या अन्य यंत्र पहले साधित किये जाते हैं। फिर इनका प्रयोग किया जाता है। साधना करते समय खाली स्थान में कुछ नहीं लिखा जाता और प्रयोग करते समय खाली स्थान में उस व्यक्ति का नाम लिखा जाता है, जिस पर प्रयोग किया जा रहा है। आगे के प्रसंग में जहां भी साध्य शब्द का प्रयोग किया गया है वहां उस व्यक्ति से तात्पर्य है जिस पर इसका प्रयोग किया गया है।

ज्वर नाशक यंत्र

विधि—इस ज्वर नाशन यंत्र को शुभ दिन (शनि, रवि मंगल, रिक्ता तिथि एवं दूषित नक्षत्र को छोड़कर) भोजपत्र पर कुंकुम, कपूर, कस्तूरी गोरोचन से लिखें। भक्ति भावनापूर्वक इसका पूजन करें, फूलों में लाल रंग के और गंधहीन पुष्प न चढ़ायें। मौसम के फल और नैवेद्य से पूजा करें। (खाली स्थान में उस व्यक्ति का नाम लिख दें, जो ज्वर ग्रस्त है) इस प्रकार पूजित यंत्र को शीतल जल में रख दें अथवा ज्वर आने से पहले इस यंत्र को पहुंचे में बांध दें। ताप, तिजारी जैसे में यह लाभप्रद रहता है।
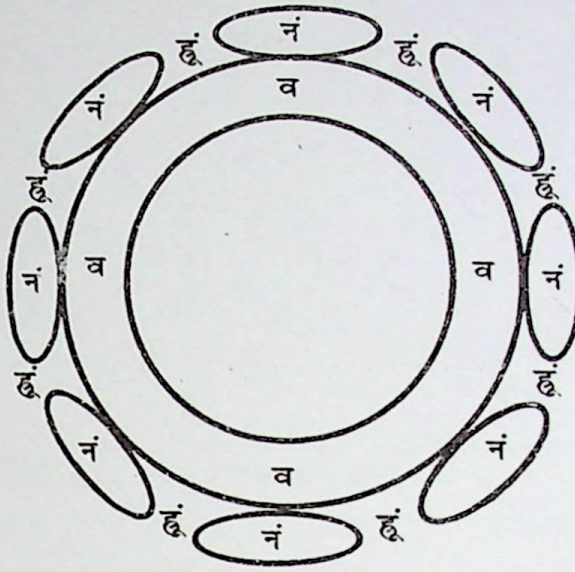
(यंत्र संख्या 20)

विधि—शिशु कष्टहर यंत्र को कपूर, कस्तूरी, कुंकुम और गोरोचन से लिखकर पंचोपचार से पूजन करे। पत्र में भोजपत्र और कलम चमेली की बनाये। किसी उग्रवार को छोड़कर सौम्यवार और सौम्य नक्षत्र के रहते इस यंत्र को लिखकर
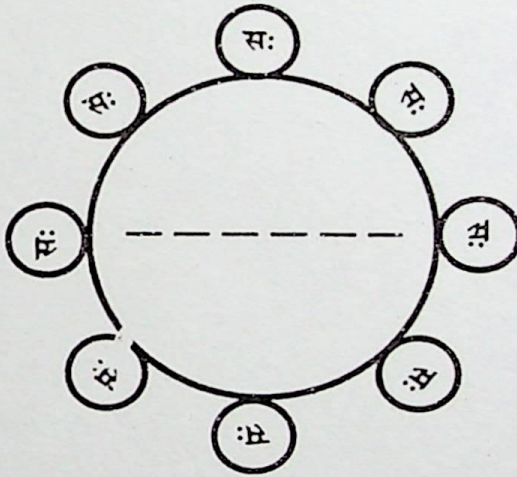
(यंत्र संख्या 21)

पूजित करे। फिर इसे त्रिलोह के ताबीज में रखकर बालक के गले में बांध दे। त्रिलोह में सोना, चांदी और तांबा आते हैं। इनको स्वरों की संख्या के अनुपात में चांदी अर्थात् सोलह भाग चांदी, व्यंजनों के वर्गों के अनुपात में सोना अर्थात् पच्चीस भाग सोना और शेष ग्यारह भाग तांबा इस प्रकार से मिलाने पर त्रिलोह बनता है।

२	३	५	६
४	२	४	६
१	१	१	२
७	७	३	३

(यंत्र संख्या 22)

विधि—उच्चाटन यंत्र को भोजपत्र पर हल्दी से लिखकर पीले पुष्पों एवं धूप, दीप गंध, नैवेद्य से पूजन कर इस भोज-पत्र को अच्छी तरह कूटकर चूर्ण कर लेना चाहिये। यह चूर्ण किसी भी खान-पान की वस्तु में खिलाने से उच्चाटन हो जाता है। बीच में खाली स्थान पर अभीष्ट व्यक्ति का नाम लिखा जाता है।

उच्चाटन का अर्थ होता है उचट जाना, उखड़ जाना, ऊब जाना, यदि कोई व्यक्ति परदेश में जाकर एक ऐसी जगह जम गया है जहां से घर की तरफ जाने का
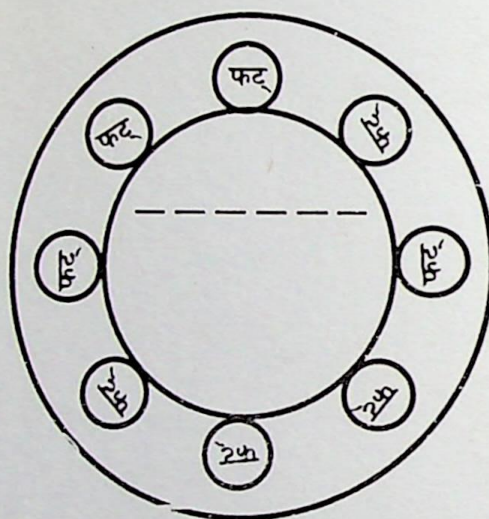
(यंत्र संख्या 23)

मन नहीं कर रहा या कोई व्यक्ति हानि सहकर भी स्थान मोह से मुक्त नहीं हो रहा अथवा कोई किरायेदार मकान को हड़प करने की बुरी नीयत कर रहा हो, तो उस पर यह प्रयोग करना हितकर रहता है, इससे व्यक्ति का जी वहां से उचट जाता है, जिस वातावरण में वह रह रहा होता है।

विशेष—उच्चाटन अभिचार कर्म माना जाता है। यह कर्म कृष्णपक्ष की

चतुर्दशी को रात्रि में किया जाता है। करने वाले व्यक्ति को लाल रंग का प्रयोग करना चाहिये अर्थात् पहनने के लिये वस्त्र, पूजा में फूल इत्यादि लाल रंग के ही लेने चाहिये। गंध में लाल चन्दन का प्रयोग किया जाए। पत्र के लिये—ऐसे प्रयोगों में जहां किसी विशेष प्रकार के पत्र का उल्लेख नहीं किया गया हो, वहां भोजपत्र ही ग्राह्य होता है। ऊपर वाला यंत्र और यह यंत्र उग्रक्रम का यंत्र होने के कारण शनि, रवि या मंगल के दिन और चतुर्दशी के दिन किया जाता है। चतुर्दशी के दिन इनमें
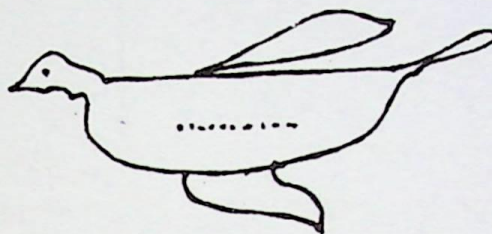
(यंत्र संख्या 24)

से कोई वार आ रहा हो तो, अति उत्तम योग बनता है अन्यथा किसी महारात्रि में ऐसे प्रयोग करना अच्छा रहता है।

कौवे की आकृति में जहां खाली स्थान है वहां उस व्यक्ति का नाम लिखे जिसका उच्चाटन करना है। उच्चाटन के लिये उपयुक्त दिन में श्मशान से प्रेतवस्त्र (कफन) लाकर कौवे के पंख की कलम से धतूरे का रस, चीते का रस, गोदन्ती हरताल (इन सबको घिसकर स्याही बना ले) से कौवे की उड़ते हुए की आकृति बनाकर इसकी विधिवत् पूजा कर ले। तब इस कौवे को बहेड़े के पेड़ पर उल्टाकर, लटका दे। जब तक यह कौवा लटका रहेगा, तब तक वह व्यक्ति एक जगह टिककर नहीं बैठ सकेगा।

विधि—इस एक सौ सैंतीस के यंत्र को श्मशान के वस्त्र पर कौवे के पंख से श्मशान के अंगारे को पीस-पीसकर यह यंत्र लिखे। इसके पीछे की तरफ जिस व्यक्ति का उच्चाटन करना हो, उसका नाम लिख दे, फिर लाल फूलों से तथा धूप, दीप, गंध, नैवेद्य से पूजा कर सामने रख ले—तिथिवार आदि ऊपर लिखे अनुसार निश्चित कर ले। इसके पश्चात् दक्षिण की तरफ मुंह कर (स्मरण रहे ये प्रयोग दक्षिणाभिमुख होकर) ही किये जाते हैं। विशेष परिस्थिति में यंत्र साधना वाले अध्याय में देखकर निश्चय कर लेना चाहिये।

'ओम नमो भगवते रुद्राय दंष्ट्रा करालाय....पुत्र बांधवैः
सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रं उच्चाटय उच्चाटय हुम फट स्वाहा ठः ठः।

यह मंत्र है, इसमें खाली स्थान में उस व्यक्ति के नाम के आगे 'मृ' (संस्कृत

६०	६७	२	८
७	३	६४	६३
६६	६१	९	१
४	६	६२	६५

(यंत्र संख्या 25)

में द्वितीयान्त होने के कारण यह आवश्यक होता है तभी इसका अर्थ 'को' होगा) लगाकर पांच माला जपकर इस कपड़े को श्मशान में फेंक आयें अथवा किसी आंधी में फेंक दें।
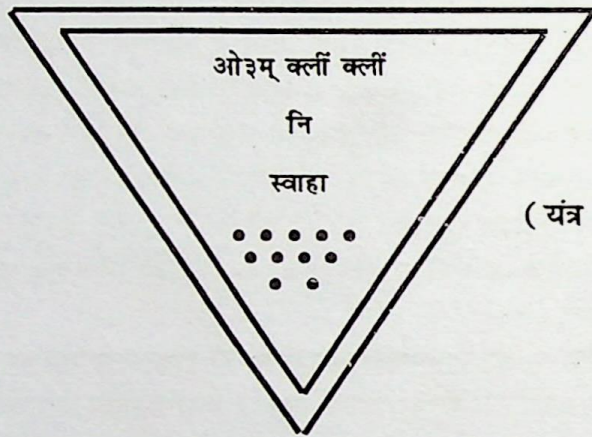
(यंत्र संख्या 26)

विधि—मानिनीकर्षण यंत्र स्त्रियों के आकर्षण करने के निमित्त किया जाता है। खासकर जब कोई मानवती स्त्री अपने अहंकार करने के कारण पतिगृह से नाराज होकर चली जाए या किसी अहंकारवती स्त्री का आकर्षण करने के लिये किया जाता है। इसकी रचना में पहले बीच के शब्द लिखे जाते हैं, नीच ही नीचे उस स्त्री का नाम लिखकर उसके ऊपर दो त्रिकोण लिखना पड़ता है।

दाहिने हाथ की अनामिका उंगली के रक्त से बांये हाथ की हथेली पर यह यंत्र लिखा जाता है फिर इसकी पूजा कर इसमें लिखे शब्दों को मन में जपा जाता

है। पर्याप्त संख्या में (पांच माला तो हो जाएं) करने के बाद हाथ धो देना चाहिये। ऐसा एक सप्ताह तक करने पर आकर्षण होता है।

इन प्रयोगों में या अन्य प्रयोगों में भी यह तथ्य स्मरण रखना चाहिये कि संभावना और आशा तो यही रहती है कि प्रयोग काल में ही हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जाए, पर कई बार सफलता नहीं भी मिलती है। किसी की दृष्टि में यह प्रयोग की विफलता माना जाता है, किन्तु अनुभव और व्यवहार सिद्ध तथ्य के अनुसार विफलता हो नहीं सकती। ऐसी परिस्थिति में अनेक बार यह अनुभव में आया है कि जो प्रयोग जिस निमित्त किया गया था, उसके परिणाम कालान्तर में जाकर प्रकट हुए। इस विफलता से बचने का दूसरा उपाय यह है कि जब तक कार्य सिद्ध नहीं हो तब तक प्रयोग निरंतर रखा जाए।

मैं अनेक बार इस तथ्य को दोहरा चुका हूं कि संसार में आज तक ऐसी कोई क्रिया नहीं हो सकती, जिसका परिणाम सामने न आया हो। प्रत्येक क्रिया परिणामवती होती है, यह दूसरी बात है कि वह क्रिया अपेक्षया उतनी बलवती एवं वेगवती नहीं हो, जितनी हमारे काम के लिये आवश्यक थी।

वशीकरण यंत्र

विधि—यह वशीकरण यंत्र यक्षकर्दम से, चमेली की लकड़ी से भोजपत्र पर लिखा जाता है। यक्षकर्दम में कपूर, केसर, अगरु, गोरोचन, कुंकुम माने जाते हैं। इस यंत्र को लिखकर तीन दिन तक श्रद्धा भक्ति सहित पूजन करें और चौथे दिन एक ब्राह्मण को भोजन कराकर श्रद्धा सहित दक्षिणा दान देकर आशीर्वाद लें, फिर इस यंत्र लिखित भोजपत्र को चांदी, तांबे या सोने के ताबीज में रखकर गले या हाथ में धारण कर लें।
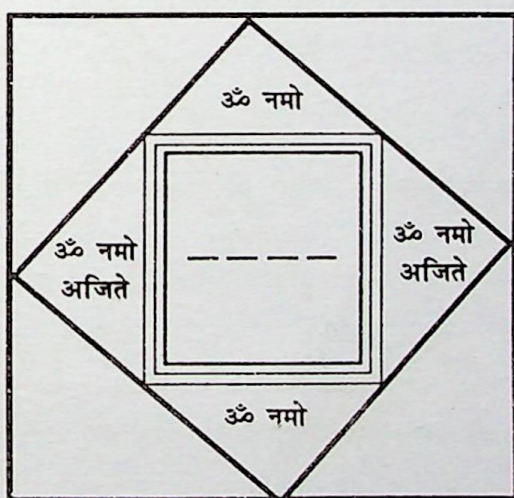
(यंत्र संख्या 27)

कलम चमेली या अनार की श्रेष्ठ रहती है, जहां किसी विशेष प्रकार की कलम का उल्लेख न किया गया हो वहां यही ग्राह्य होती है। साधारणतया आठ अंगुल की सामाजिक जीवन की यह सबसे बड़ी दुखान्तिका है कि व्यक्ति आवश्यकता से हटकर इच्छा के जंजाल में उलझ जाता है। आवश्यकता प्रकृति प्रदत्त है और इच्छा मानव रचित। व्यक्ति की क्षुद्रता और स्वार्थ जब किसी दैहिक या आर्थिक आधार से पोषित होने लगती है, तो व्यक्ति में अहंकार पनपने लगता है। और दर्पविष सर्पविष से भी अधिक घातक बन जाता है। अहंकारी व्यक्ति अपनी शक्ति के बल पर दूसरे जनों को क्रूरतापूर्वक सताने लगता है। ऐसी स्थिति में शान्तिप्रिय और सदाचारी लोगों का जीना भी दूभर हो जाया करता है।

किसी व्यक्ति को सताना या उस पर वार करना बुरी बात है। किन्तु अपनी रक्षा के लिये आततायी का साहस कम करना व्यावहारिक बात है जो लोग इस प्रकार की परिस्थिति में अपनी सहन शक्ति खो चुकते हैं और इस प्रकार की परकृत पीड़ा से त्रस्त हैं, उनके लिये ये प्रयोग आशा की किरण बन सकते हैं।

इस प्रकार के प्रयोग करने के लिये व्यक्ति का साहसी होना तो आवश्यक है ही पर पहले अपनी रक्षा कर लेना भी व्यवहारिक है। यद्यपि इन प्रयोगों में ऐसी कोई भयानक परिस्थिति या दृष्टांत प्रकट नहीं होते फिर भी ऐसे प्रयोगों को करने के लिये जो स्थान व समय होता है, वहां भयजनक स्थितियां सहज रूप से रहती हैं। अधिक अच्छा रहे किसी विज्ञजन से प्रयोग करवा लिये जाएं अथवा उनकी देख रेख में कर लिये जाएं। स्त्रियां, सात्विक ब्राह्मणों पर ये प्रयोग नहीं करने चाहिये। इस प्रकार

(यंत्र संख्या 28)
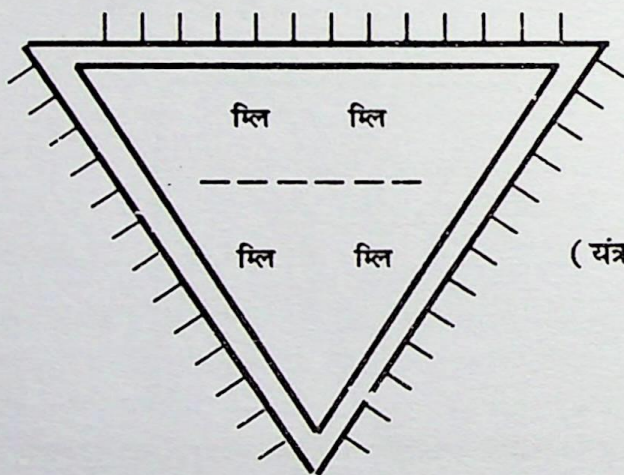
के प्रयोग करने के पश्चात् दोष शान्ति के लिये यथा शक्ति दान करने की व्यवस्था शास्त्र ने दी।

विधि—शत्रुशातन यंत्र को मनुष्य की खोपड़ी में श्मशान के कोयले और धतूरे के रस से, लोहे की कलम से लिखा जाता है। यह प्रयोग श्मशान में किया जाता है तथा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात में नग्न होकर किया जाता है। यंत्र लिखित खोपड़ी का पूजन कर मद्य से तर्पण और मांस का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। इस पूजित कपाल को बड़े शराबों के बीच रख श्मशान में गाढ़ दिया जाता है। इस यंत्र का तीन दिन में ही प्रभाव प्रकट हो जाता है, जिस पर किया गया है। वह व्यक्ति ग्रस्त हो जाता है, यदि उसे ठीक करना हो तो उस शराब संपुट और खोपड़ी को निकालकर किसी जल के तालाब या कुएं में डाल देना चाहिए।
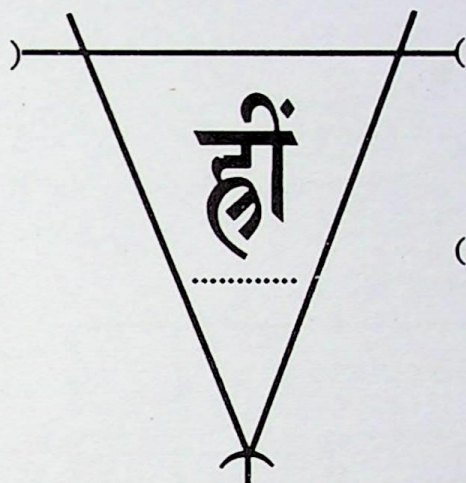
(यंत्र संख्या 29)

विधि—इस यंत्र को प्रेतवस्त्र पर श्मशान के कोयले और धतूरे के रस से लोहे की कलम से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात में श्मशान में जाकर लिखे तथा मद्य-मांस से पूजा करे ! यद्यपि ऐसे अभिचार कर्म में मदिरा और मांस ही उपयुक्त हैं किन्तु जो ऐसी सुविधा नहीं जुटा सकते वे मदिरा के स्थान पर गुड़ और दूध मिला हुआ तथा मांस के स्थान पर तिल, सिन्दूर और उड़द काम में ले सकते हैं। इस पूजित यंत्र को किसी मनुष्य की नली में डालकर श्मशान में खोदकर गाड़ दें।

विधि—उक्त यंत्र शत्रु सन्तापन को कौवे के पंख की कलम से, मनुष्य के कपाल में श्मशान के कोयले, बकरी के खून और धतूरे के रस से लिखें। इस यंत्र को पूजित कर श्मशान की राख भरकर आग के ऊपर रख दें।

इस यंत्र का कण्डक्शन इफैक्ट होता है और वह अभीष्ट व्यक्ति कहीं भी हो, इस प्रयोग से प्रभावित होकर वह अस्वस्थ उद्भ्रांत चित्त हो जाता है।

इस प्रकरण के शत्रु-शातन के प्रयोगों में कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनको जुटाना कठिन रहता है फिर भी ऐसे उग्र और सटीक एवं प्रभावशाली प्रयोगों में यह सार्थकता
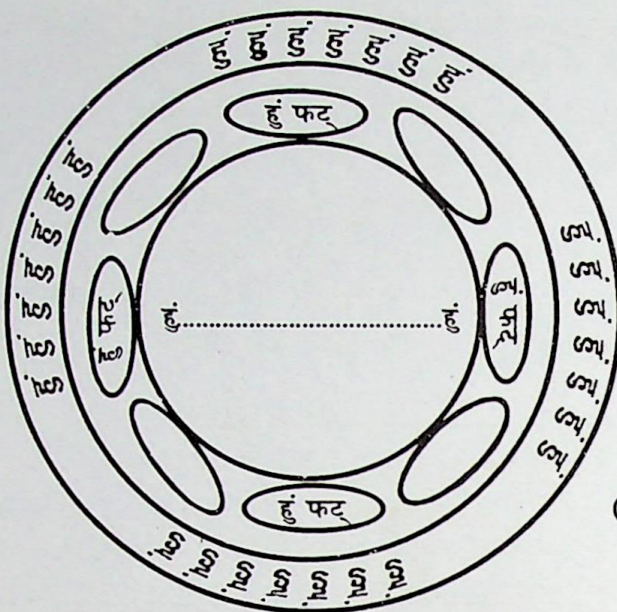
(यंत्र संख्या 30)

प्रदान करने वाली सामग्री होती है।

१९	२६	२	८
७	३	२३	२२
२५	२०	९	१
४	६	२१	२४

(यंत्र संख्या 31)

विधि—यह 55 का यंत्र विशेषकर उन लोगों के लिये है, जो परदेश में गये या खोये हुए व्यक्ति को आकर्षित करना चाहते हैं। इसे पीपल या आम के नीचे बैठकर सेही के शूल से जमीन पर एक सौ आठ बार नित्य लिखने से परदेश में गया व्यक्ति लौट आता है। वैसे भी यदि सेही का शूल न मिले, तो आम के पत्ते पर कुंकुम बिछाकर अनामिका उंगली से नित्य एक सौ आठ बार लिखना चाहिये। लिखते समय अभी़ष्ट व्यक्ति का चित्र कल्पना में रखकर यह सोचते रहना चाहिये कि वह जाल में फंसी मछली की तरह विवश होकर चला आ रहा है। अभीष्ट व्यक्ति के पहने

हुए कपड़े पर कुंकुम से लिखना भी लाभकर रहता है, इस पर लिखे यंत्र को पूजा कर ऊपर (उंचे) रख देना चाहिये तथा नित्य अगरबत्ती जलानी चाहिये। अगले दिन उसी पर लिखकर पूजना चाहिये। स्मरण रहे—यह वस्त्र पहना हुआ हो, धुला हुआ न रहे।

भ	ज	व
क	ग	जः
छः	छः	दः

(यंत्र संख्या 32)

विधि—ऊपर लिखित यंत्र को शनिवार, मंगलवार, रविवार के दिन कागज पर लिखकर दर्द करते हुए कान पर बांध दे। जिस व्यक्ति को यह यंत्र सिद्ध है, उसके लिये वार की कोई पाबन्दी नहीं है।
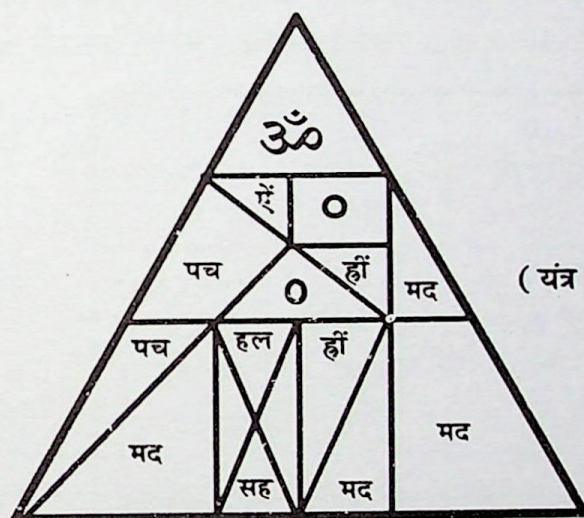
(यंत्र संख्या 33)

विधि—इस यंत्र को शुभ तिथि, वार नक्षत्र के दिन अपने इष्टदेव का स्मरण कर स्वस्थ शुद्ध मन से भोजपत्र पर अष्टगंध से लिखे फिर पंचोपचार से पूजन कर सोने, चांदी अथवा तांबे के ताबीज में जड़वाकर बांध ले। इस प्रकार के यंत्रों को बृहस्पतिवार या सोमवार को धूप देते रहना ठीक रहता है।
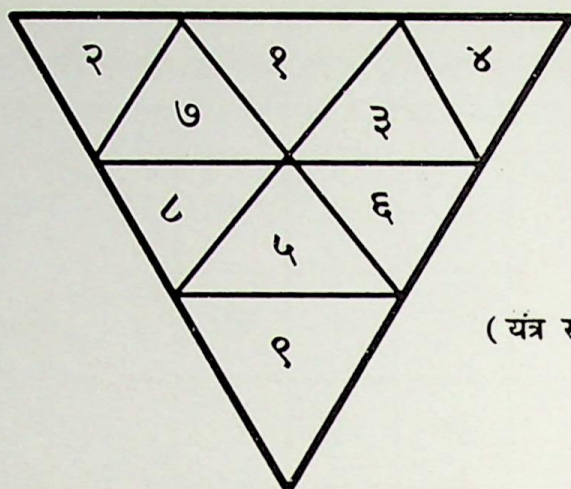
(यंत्र संख्या 34)

विधि—अभीष्ट सिद्धि यंत्र को अष्टगंध से भोजपत्र पर लिखे, लिखने का क्रम बायें से दायें अर्थात् पहले दो, फिर सात, फिर एक, तीन, चार, आठ, पांच, छः नौ इस प्रकार है। पन्द्रह हजार लिखने से इसका पुरश्चरण होता है। प्रतिदिन निश्चित संख्या में लिखकर पंद्रह हजार की संख्या पूरी कर लें। फिर इन यंत्रों की गेहूं के आटे की गोली बनाकर मछलियों को खिला दें। इस प्रयोग से अभीष्ट कामना पूर्ण होती है।

८ ह्रीं राहवे नमः	१ ह्रीं रवये नमः	६ ह्रीं शुक्राय नमः
३ ह्रीं कुजाय नमः	५ ह्रीं गुरवे नमः	७ शनै ह्रीं श्चराय नमः
४ ह्रीं बुधाय नमः	९ ह्रीं केतवे नमः	२ ह्रीं सोमाय नमः

(यंत्र संख्या 35)

विधि—यह नव ग्रह यंत्र है। किसी भी व्यक्ति के सारे ही ग्रह तो निर्बल होने के कारण दूषित नहीं होते, जो होते हैं, उनकी शांति के निमित्त यह यांत्रिक प्रयोग किया जाता है। कुण्डली में जो ग्रह प्रतिकूल है, उसकी महादशा या अन्तर्दशा के समय यह प्रयोग करना उचित रहता है।

इस नौ कोष्ठक के यंत्र में एक दो तीन आदि के अंक लिखे हैं जिस ग्रह का अनिष्ट शांत करने के लिये प्रयोग किया जाए उसी से प्रारंभ करना चाहिये, जैसे बृहस्पतिवार के दोष की शांति के लिये प्रयोग करना है तो पांच का अंक, यंत्र के केन्द्र भाग से लिखा जाएगा, फिर छः के अंक वाला कोष्ठक इस तरह नौ तक लिखने के बाद फिर चार तक इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिये भी ऐसा ही क्रम रहेगा। अंक और कोष्ठक वे ही रहेंगे, उनमें कोई अन्तर नहीं होगा। लिखते समय क्रम निर्वाह कोष्ठकों के ऊपर-नीचे अथवा बायें दायें की गति से न रहकर अंक क्रम से रहेगा।

पीपल के पत्ते पर खड़िया या स्याही से यह यंत्र लिखकर पूजा कर पीपल की जड़ में रख दिया जाए। अच्छा यह रहे कि नौ पीपल के पत्तों पर यह यंत्र लिखकर पीपल की जड़ में रख दिया जाए। ऐसा अट्ठाईस दिन तक करने से ग्रह जनित बाधा शान्त होती है। जिस ग्रह के निमित्त करना हो उसके वार से प्रारम्भ करना चाहिये। राहू, केतु के लिये शनिवार मान्य है।

(यंत्र संख्या 36)

विधि—इस यंत्र को गोरोचन, चन्दन, केसर, कपूर, कुंकुम से लिखकर पूजन (पंचोपचार से) करके अपने सामने रख ले। खाली स्थान मध्य में पति का नाम लिख ले। लाल चन्दन की माला से ''ओम कमामलानि पति मे वशमानयं ठः ठः''

इस यंत्र के जप करें। यंत्र के पूजन में लाल रग के फूल प्रयोग में लें। तीन माला रोज जपने से एक सप्ताह में इक्कीस सौ जप हो जाते हैं। संभव हो तो दशांश हवन भी कर लें। इस पूजित यंत्र को किसी ताबीज में रखकर गले में बांध लें। अधिकतर इस यंत्र की उपयोगिता उस परिस्थिति में रहती है, जब पति और चक्कर

में फंस जाए। यह यंत्र काम करेगा। यदि कदाचित् काम न करे तो एक प्रयोग उनमें विद्वेषण का करें फिर दोहरा दें।

पन्द्रह के यंत्र के विविध प्रयोग

६	७	२
१	५	९
८	३	४

(यंत्र संख्या 37)

इस यंत्र को भोजपत्र पर अथवा कागज पर अनार की कलम से कुंकुम पर लिखकर धूप देकर घोड़े की गर्दन में बांध दे। यदि घोड़े का पेशाब बन्द हो जाये पेट में पीड़ा हो या अन्य कोई सामान्य विकार हो तो शांत हो जाता है, पर यह प्रयोग उस व्यक्ति के द्वारा करने पर लाभ देता है, जिसने यह यंत्र सिद्ध कर रखा है अथवा जिसे कोई तांत्रिक प्रयोग सिद्ध है अथवा जो सदाचारी है और नित्य भगवान् का पूजन करता हो।

प्रथम दृष्टि में अंकों का यह संयोजन गणित का चमत्कार है किन्तु इनको रेखा गणितीय आधार देने पर विचित्र आकृतियां उभरती हैं। यहां जो रेखा चित्र

(1)

(2)

(3)

(4)

(5)

(6)

(7)

(8)

बनाये गये हैं वे पन्द्रह के यंत्र को मानकर बनाये हैं, इनका एक ही लक्ष्य है कि अंक वाले यंत्रों में चाल का परिवर्तन करने पर कितना अन्तर पड़ जाता है। इस पुस्तक में प्रयुक्त पन्द्रह के यंत्र की सामान्य रचना शैली पर ये चित्र निर्मित किये गये हैं।

जिन कोष्ठकों में जो अंक लिखे हुए हैं वे ही लिखे जायेंगे, किन्तु उनके लिखने का क्रम बदल जाएगा और इस परिवर्तन से ही ये विचित्रताएं प्रकट होंगी। गणित वाले जानते हैं कि एक से नौ तक की संख्याओं में स्थानीय मान का क्या अर्थ है ? और चाल में इन संख्याओं का स्थानीय मान तो बदलता ही है, लिखने वाले व्यक्ति के हाथ के बरतन में जो रेखा बनती है, उसमें भी अन्तर पड़ता है।

भाषा की तरह उत्तर से दक्षिण गति और गणित (पहाड़े आदि) की पूर्व पश्चिम गति सामान्य है। यह लोक व्यवहार है, प्रकृति की शैली है। हमारी पृथिवी पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करती है, इसलिए सूर्य हमें पूर्व से पश्चिम की तरफ जाता दिखाई देता है किन्तु प्राचीन पुस्तकों में (जो खुले पत्रों में लिखी जाती थी) यह गति प्रत्यक्ष दिखाई देती है क्योंकि उनमें पत्रों को लिखने का क्रम ऊपर से नीचे अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर गति करता है किन्तु पत्रों को उलटने का क्रम पश्चिम से पूर्व की ओर अर्थात् पृथिवी की गति के अनुसार चलता है।

भाषा में प्रथम गति उत्तर-दक्षिण फिर पूर्व-पश्चिम चलती है। आप जिन पृष्ठों को पढ़ रहे हैं, उनमें यदि आपका मुख पूर्व की ओर माना जाए तो आपके पढ़ने का क्रम याभ्योत्तर रहेगा और पृष्ठ के अनुसार पूर्व पश्चिम। यही पुस्तक खुले पत्रों की

है तो पलटकर रखने का क्रम पश्चिय से पूर्व हो जायेगा।

उत्तर-दक्षिण मुख और पुच्छ का आगम और निर्गम का प्रतीक है। यह हमें बांधे रखता है। पृथिवी की आकर्षण शक्ति का सिरा उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर ही समाप्त होता है। हमारी इस लेखन शैली के पीछे, लेखन की गति का प्रेरक आधार एक प्राकृतिक क्रिया विधि है। कोष्ठक वाले यंत्रों में भी रेखाओं से ही कोष्ठक बनाये जाते हैं पर उन रेखाओं को लिखने का क्रम उत्तर से प्रारम्भ कर दक्षिण की तरफ ले जाने का है और ऊपर से नीचे की तरफ अर्थात् बायें से दायें और पूर्व से पश्चिम किन्तु कई बार विशेष विधि का निर्वाह करते समय हम रेखाओं का यह क्रम बदल देते हैं अर्थात् दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूर्व। इस गति का भी विशेष प्रभाव और परिणाम प्रकट होता है। अभिचार कर्म के लिए हम दक्षिणाभिमुख होकर बैठते हैं, क्योंकि दक्षिण दिशा है। ऐसा ही रहस्य रेखाओं के दक्षिण से उत्तर की ओर गति करने में है।

आइये अब इन चित्रों का विश्लेषण करें। चित्र संख्या (1) नौ के यंत्र को एक से प्रारंभ करके क्रमशः नौ तक के अंकों तक गति करने का है। इस यंत्र की गति रेखा के रेखागणितीय फलित कई निकल सकते हैं, और कल्पनाशील चित्रकार इन रेखाओं को रंगों से मांसल कर कोई भी नयन मनोहर आकार दे सकता है, जो हमारे पंचमुखी हनुमान से मेल खा सकती है किन्तु यंत्र शास्त्र इस गति से भगवान् अंजनीतनय को प्रसन्न करने की बात कहता है।

चित्र संख्या (2) में 2 से प्रारम्भ किया जाता है और संख्या लेखन का क्रम अर्थात् चाल 2-3-4-5-6-7-8-9-1 यही रहता है जिसका फल होता है—राज वशीकरण।

चित्र संख्या (3) में इस यंत्र का लेखन तीन से प्रारंभ होता है पर उसमें अंकों की चाल अनुक्रम से न रह कर 3-2-8-5-4-9-1-6-7 रहता है। इस क्रम से लिखने पर यह यन्त्र सम्पत्तिप्रद और पुत्रप्रद रहा करता है।

चित्र संख्या (4) में इसकी गति पांच से प्रारम्भ होती है और अंकों का लेखन क्रम-चाल 5-6-7-2-9-4-3-8-1 है। यह क्रम धन प्राप्ति के लिए अपनाया जाता है।

चित्र संख्या (5) में गतिक्रम अनुलोम पद्धति पर है। इसका प्रारम्भ 6-7-2 अर्थात् प्रथम पंक्ति में उत्तर से दक्षिण फिर मध्यम पंक्ति में 9-4 अर्थात् अवरोही गति फिर दक्षिण से उत्तर 3-8 फिर ऊर्ध्व गति मध्यम पंक्ति में समाप्त। यह क्रम आकर्षण के लिये ग्राह्य होता है।

चित्र संख्या (6) में आरोही गति है, नीचे के निर्गम बिन्दु से ऊपर की ओर चाल रहती है। चार से प्रारम्भ होने वाले क्रम में 4-3-8-1-5-9-2-7-6 लिखे जायेंगे। यह क्रम पाश मोचन के लिये रखा जाता है। हम लोग ऊपर से नीचे गति करते

हैं इसलिये कर्म और फल के चक्र में फंसते जाते हैं, यदि हमारी गति ऊर्ध्वमुखी हो जाए, तो हम भी इससे मुक्त हो सकते हैं।

चित्र संख्या (7) में इसका प्रारम्भ सात से होता है, चाल 7-8-9-4-5-6-1-2-3 रहती है। यह क्रम उच्चाटन कार्य में लाभप्रद रहता है।

चित्र संख्या (8) में इसका प्रारम्भ आठ में होता है और चाल 6-9-6-1-2-4-3-5-7 रहती है। यह क्रम उत्क्रान्त शक्ति उत्पन्न करता है और मारण के लिये यह विधि प्रयुक्त होती है।

सारांश यह कि प्रत्येक यंत्र षट्कर्मों की साधना का मार्ग बनता है क्योंकि उसका मूल गति है और प्रकृति के इस अनेक रूप विस्तार में, उसके विविध क्रिया-कलापों का आधार गति ही है। बंधन भी गति है, तो विमोचन भी गति है, आकर्षण भी क्रिया है, तो विकर्षण भी क्रिया है। जब हम गति शैली को, क्रिया के रहस्य को समझ जाते हैं, तो एक ही वस्तु से अनेक कार्य सम्पन्न करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं।

यह रहस्य ऊपर दिये गये यंत्रों की गति को रेखायित कर प्रकट किया गया है, यही रहस्य दूसरे यन्त्रों की रचना का भी आधार है, अन्तर यह रहता है कि जिस प्रकार का कार्य करना होता है, उसी को हम प्रमुखता देकर शेष को गौण बना देते हैं। संसार में कोई भी वस्तु निरपेक्ष नहीं है, सभी अपने परिवार से जुड़े हुए हैं और तो और दो बिल्कुल विपरीत गुण-धर्म वाली वस्तुयें भी एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं दिन और रात की तरह, जीवन और मृत्यु की तरह। यन्त्रों के आविष्कर्ता ऋषि प्रकृति के गति क्रम को यति के रहस्य को समझ रहे थे, इसलिये उन्होंने एक ही साधे सब सधें वाली बात चरितार्थ की।

यन्त्र भी अपने आप में निरपेक्ष नहीं है, क्योंकि उसका भी एक प्रयोजन है, वह हमारी चेतन सत्ता से सम्प्राण होकर स्थूल प्रकृति को प्रभावित करता है। यन्त्र साधना के लिये काम में लिए जाने वाले पदार्थ हमारी शक्ति को उद्दीप्त करते हैं तथा साधना के समय ही हमारी एकाग्रता शक्ति को केन्द्रित कर विसर्जित करते हैं।

सम्भव है—हम यह प्रश्न करें कि यन्त्र साधना के माध्यम से जो कार्य सम्पन्न होते हैं, वह यन्त्र से होते हैं या हमारी शक्ति से ? वास्तविकता यह है कि दोनों ही करते हैं। तन्त्र में एक प्रक्रिया होती है—साक्षीकरण की, इसका अर्थ होता है—साधक और साध्य का एक रूप हो जाना, पर यह क्रिया मंत्र में की जाती है, खासकर उस समय जब मन्त्र दीप्त नहीं होता, पर यन्त्र में यह क्रिया नैसर्गिक रूप से सम्पन्न हो जाती है। यन्त्र साधना में हम जिन निष्प्राण पदार्थों का प्रयोग करते हैं। ये उपकरण हमारी शक्ति से परिचित कराते हैं। ये उपकरण हमारी शक्ति को मर्यादाबद्ध किये

४	५	७४	७७
७९	७२	८	१
६	३	७६	७५
७३	७८	२	७

(यंत्र संख्या 38)

रहते हैं और हम साधनों एवं अपने बीच छाये अन्तर को पाटते हुए उस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं जहां मोहन आकर्षण-विकर्षण आदि नितान्त सामान्य बात है।

यद्यपि यह यंत्र ही काम करेगा फिर भी यदि पुरुषत्वप्रदत औषधियां इस यंत्र के साथ अथवा मंत्र के साथ इस यंत्र का प्रयोग करें तो अधिक लाभ होता है।

विधि—इस यंत्र को भोजपत्र पर केसर से लिखकर पंचोपचार पूजन करें। शुंशुक्राय नमः इस मंत्र का जप करें। पूजित यंत्र को किसी ताबीज में जड़ाकर कमर में बांध लें पर मंत्र के दस हजार जप करने के बाद ही यंत्र काम में लें। औषधि गोखरू, लाल मखाने, शतावर, कौंच के बीज, नागबला, खरौंटी ये सब समान भाग लेकर पीसकर रख लें। इनका चूर्ण कर पांच ग्राम रात्रि में दूध के साथ लें और इस यंत्र को कमर में बांध लें। यंत्र बांधने में लाल धागा ही काम में लिय जाए।

गर्भरक्षा यंत्र

१००	९१	२	७
६	३	९४	१०३
८०	११०	८	१०
४	५	१०२	८८

(यंत्र संख्या 39)

गर्भ रक्षा यंत्र को किसी भी गुरुवार के दिन चन्दन, केसर से भोजपत्र पर लिखकर पूजा करें, गुग्गल की धूप दे और गर्भवती के गले या हाथ में लाल या सफेद धागे से बांध दें।

इसके साथ ही औषधि प्रयोग भी किया जाए तो अधिक उत्तम रहे। औषधि में मुल्तानी मिश्री पांच ग्राम और काली मिर्च दो-दो ग्राम प्रतिदिन प्रातः काल ठण्डे जल से लेने से गर्भ-स्राव नहीं होता।

रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में लायी सफेद आक की जड़ गले में बांधने से भी गर्भ रक्षा होती है।

पुत्रोत्पत्तिकर यंत्र बीसा ही है, पर इसकी गति ऊपर से नीचे रहने पर ही बीस

१०	१	१२
८	१५	३
२	४	५

(यंत्र संख्या 40)

रहती है, बायें दायें इसका योग दूसरा आता है। इस विशेषता के कारण इसका प्रयोग पुत्र प्राप्ति के लिये किया जाता है।

अष्टगंध से भोजपत्र पर लिखे इस यंत्र को पंचोपचार से पूजा करें फिर इसके सामने दीपक को तथा धूप को निरन्तर रखते हुए 'गं गणपतये नमः' इस मंत्र का जाप करें। अच्छा यह रहे कि पति-पत्नी दोनों ही इस यंत्र का जाप करें यंत्र को पूजा करके स्थापित करें और 'देवकी सुत गोविंद, वासुदेव जगत्पते देहि मे तनयं कृष्ण त्वां हुं शरणं गतः' इस मंत्र की पांच माला प्रतिदिन जपे। गणपति मंत्र का जप यंत्र के सम्मुख और कृष्ण मंत्र का जप वैसे करे।

इस यंत्र का प्रयोग उस स्थिति में करना चाहिए जब व्यक्ति पर किसी दुर्जन द्वारा कोई अभिचार कर्म करने की आशंका हो। ऐसे लोग इसे साधित करके गले में पहने रहें अथवा साधित करके रख लें और जब कभी ऐसा प्रयोग किया हुआ देखें, इसे धूप देकर गले में पहन लें।

अधिक अच्छा तो यह रहे कि इसे यशब (पत्थर) पर खुदवा लें और सिद्ध उसी प्रकार कर लें, जिस तरह सामान्यता किया जाता है। सिद्ध करने की विधि यह है

(यंत्र संख्या 41)

कि होली दीपमालिका या शिवरात्रि में रात के समय धतूरे के रस में इसे भोज पत्र पर लिख लिया जाए, यशब पर खुदा हुआ हो तो उस खुदे की रेखाओं पर धतूरे के रस से लिख लें। गुग्गल की धूप देकर रख लें। सुविधा हो तो प्रति शनिवार इसको धूपित करता रहे। इससे यह जीवन्त बना रहता है। भोज पत्र को ताबीज में रखकर गले में पहन लें। साधित यंत्र किसी के भी काम आ सकता है। यदि अभिचार कर्म अपना काम कर चुका हो अर्थात् उसका विष हृदय में पहुंच गया हो, तो यह उतना काम नहीं कर पायेगा फिर भी लाभ देगा ही। कलम लोहे की रहेगी।

वाक् सिद्धि के लिये, वाक्सिद्धि की साधना करने वाले को सदा सत्यभाषी

वाक् सिद्धि यंत्र

८८	१३	२	८
७	३	१०	८१
११	८६	१	१
४	६	८७	१२

(यंत्र संख्या 42)

होना चाहिए। सामान्यतः परिहास में और दूसरे की प्राण रक्षा के लिये असत्य बोलना बुरा नहीं है और इससे सत्य का व्रत खण्डित हुआ नहीं माना जाता, किन्तु इन स्थितियों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है, जहां व्यक्ति अपवाद में भी अपनी प्रतिज्ञा खण्डित नहीं करता, वहां साधना निर्दोष और बलवती रहा करती है। मेरा अपना अनुभव है कि व्यक्ति चाहे किसी भी मंत्र की उपासना करें निष्ठापूर्वक करने पर वाक्सिद्धि सहज रूप में प्राप्त होती है। यह प्रत्येक साधना का अनिवार्य अंग है पर परांबा की कृपा से यह सिद्धि मिल जाती है तो इस पर इतराना और इसका अनर्गल प्रयोग नहीं करना चाहिए, इससे वाक् सिद्धि ही नहीं, मूल साधना का बल भी क्षीण होता है। संसार के सामान्य व्यवहार जैसे चलते हैं वैसे चलते रहें, उनमें हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। किसी भी व्यक्ति की नियति को धन बल से (जो मूलतः साधक का अपना अर्जित साधना बल है) स्थगित कर हम अपनी शक्ति को व्यय करते हैं इसलिये अच्छा रहे कि अपनी साधना के संचित कोश को कृपण की तरह गुप्त और अक्षत बनाये रखें। हम कोई अवतार नहीं हैं कि धरती का भार उतारने आये हैं, हम अपना ही कल्याण कर लें, अपनी ही मुक्ति का मार्ग पार कर लें यही क्या कम है! फिर भी परोपकार करना हमारा सामाजिक दायित्व है, पर उसके लिये किसी पीड़ित व्यक्ति को परामर्श और मार्गदर्शन करना ही पर्याप्त है। जो हम जानते हैं उसे बतलाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। शास्त्र कहता है—विद्या ब्राह्मण के पास आकर कहने लगी—'हे ब्रह्मन् तुम मुझे कृतघ्न उद्दण्ड, ईर्ष्यालु और लोभी व्यक्ति को मत देना यदि ऐसा किया, तो मेरा बल क्षीण हो जाएगा। यदि सत्पात्र व्यक्ति को तुमने मुझे नहीं दिया तो मैं, तुम्हें शाप दे दूंगी'—यह तथ्य तो स्मरण रखना ही होगा।

विधि—वाक् सिद्धि यंत्र को कुलिंजन से भोज पत्र पर लिखे कलम अनार की रहे। नित्य एक सौ आठ बार जपे। लिखने का क्रम बायें से दायें ही रहेगा। इस प्रयोग को करते रहने से कालान्तर में वाक्-सिद्धि मिल जाती है। पराये अन्न से बचे, मन-कर्म-विचार से शुद्ध पवित्र रहे, किसी को कष्ट न दे। असत्य भाषण न करे। साथ में अनुपान के रूप में भगवान् शिव के किसी भी मंत्र की तीन या पांच माला जपते रहे।

धन प्राप्ति के लिये प्रयोग

विधि—इस यंत्र को लाल चन्दन से बिल्व पत्र पर लिखें और शिव की मूर्ति पर चढ़ा दें। अच्छा यह रहे कि जिस शिव मन्दिर का द्वार पश्चिम दिशा की तरफ हो उसमें किया जाए, यदि ऐसा मन्दिर न मिले तो साधक को पश्चिम दिशा की तरफ मुख करके यह प्रयोग करना चाहिए। बिल्व पत्र में तीन पत्ते होते हैं। तीनों पत्तों पर यह यंत्र न लिखकर केवल बीच वाले पत्र पर ही लिखे। वैसे तीनों पत्रों

वं	वं	वं	वं
यं	यं	यं	यं
दं	दं	दं	दं
लं	लं	लं	लं

(यंत्र संख्या 43)

पर लिखने में भी कोई आपत्ति नहीं है पर ऐसा वहीं करना चाहिए जहां बिल्व पत्र न मिलें, प्रतिदिन एक सौ आठ बिल्व पत्र चढ़ाने चाहिए। यह प्रयोग श्रावाण मास में करना चाहिए। भगवान् शिव की उपासना श्रावण मास में ही प्रायः की जाती है। इस प्रयोग से धन और स्वास्थ्य दोनों मिलते हैं। श्रावण मास आ रहा है, यह प्रयोग करने की मेरी राय है। धन प्राप्ति होगी ही, पूर्व जन्म के पाप अधिक हुए और यह प्रयोग उनका क्षय करने में मात्राबल में कम भी रहा तो कोई बात नहीं, भगवान् शिद की आराधना का पुण्य तो मिलेगा ही और पाप के समानान्तर पुण्यधन का लाभ होगा।

कामना सिद्धि यंत्र

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

(यंत्र संख्या 44)

प्रस्तुत कामना सिद्धि यंत्र मैंने पहले वाली पुस्तक में भी दिया है। अनेक लोगों ने इसका प्रयोग करके देखा है और इसके परिणामों में सफलता का अनुपात अधिक रहा है, इसलिये इस यंत्र और धन प्राप्ति वाले यंत्र की पुनरावृत्ति का लोभ मैं टाल नहीं सका। इसके प्रयोग करने वालों के अनुसार काम सिद्ध हुआ है। इसमें

कभी-कभी विलंब अवश्य हुआ है। इसके साथ ही एक शास्त्रीय व्यवस्था फिर स्मरण करा दूं कि पुस्तक आपके लिये है और पुस्तक का ही प्रयोग आप करेंगे, किन्तु कोई भी प्रयोग करने से पहले किसी विद्वान सदाचारी एवं कर्मनिष्ठ ब्राह्मण से प्रयोग करने की आज्ञा ले ली जाए, इससे हमें सिद्धि नियत मिलती है। यह प्रयोग केवल रविवार को किया जाता है और अधिक से अधिक सात रविवार करना होता है, इससे अधिक नहीं किया जाए। इस अवधि में काम नहीं होता है तो धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की जाए तथा विश्वास रखा जाए। स्मरण रहे विश्वास भी हमारी साधना का एक प्रमुख अंग है।

विधि—इस यंत्र को भोजपत्र पर लिखें। हल्दी घिसकर अनार अथवा चमेली की कलम से लिखें। अंकों को भरने का क्रम उत्तर-दक्षिण अर्थात् बायें से दायें रहेगा। इस प्रकार कोष्ठकों को पूरा कर इसके पीछे की तरफ अपनी कामना लिख लें। फिर इसे पूजित कर कपास में लपेट बत्ती बना लें और तिल के तेल में रखकर दीपक जला लें। पूर्व की तरफ मुख करके बैठें और दीपक को अपनी तरफ मुख करके रख लें तब हल्दी की माला से 'ओम ह्रीं हॅ सः' इस मंत्र को ग्यारह सौ बार जपें।

भोजपत्र को रुई में लपेटने से जो बत्ती बनेगी, उस बत्ती का मुख जिस तरफ होगा यानि लौ जिस तरफ से बनेगी वही मुख कहलायेगा। साधक के पूर्व मुख रहने से दीपक पश्चिम मुख हो जाएगा। हल्दी की माला छोटी हल्दी की गांठ को बांधकर भी बनाई जा सकती है तो गीली या गीली की गई हल्दी को काटकर उसमें छेद करके पिरोने से भी माला बन सकती है। माला में एक सौ आठ दाने ही हों, यह जरूरी नहीं है, सत्ताईस या चौवन भी रह सकते हैं, यह संख्या भी सिद्धिप्रद रहती है। दीपक में तेल पर्याप्त भर लिया जाए, जो जप चलते रहते तक जलता रहे। जप पूरा होने के बाद भी दीपक जलता रहे, तो कोई आपत्ति नहीं। जलते दीपक को बुझाना नहीं चाहिए। जप समाप्ति पर दीपक को प्रणाम कर उठ जाना चाहिए।

सर्वजन वशीकरण यंत्र

१	१६	३	८
७	४	१३	१२
१५	१०	९	२
५	६	११	१४

(यंत्र संख्या 45)

धनप्रद और पुत्रपद मंगल यंत्र
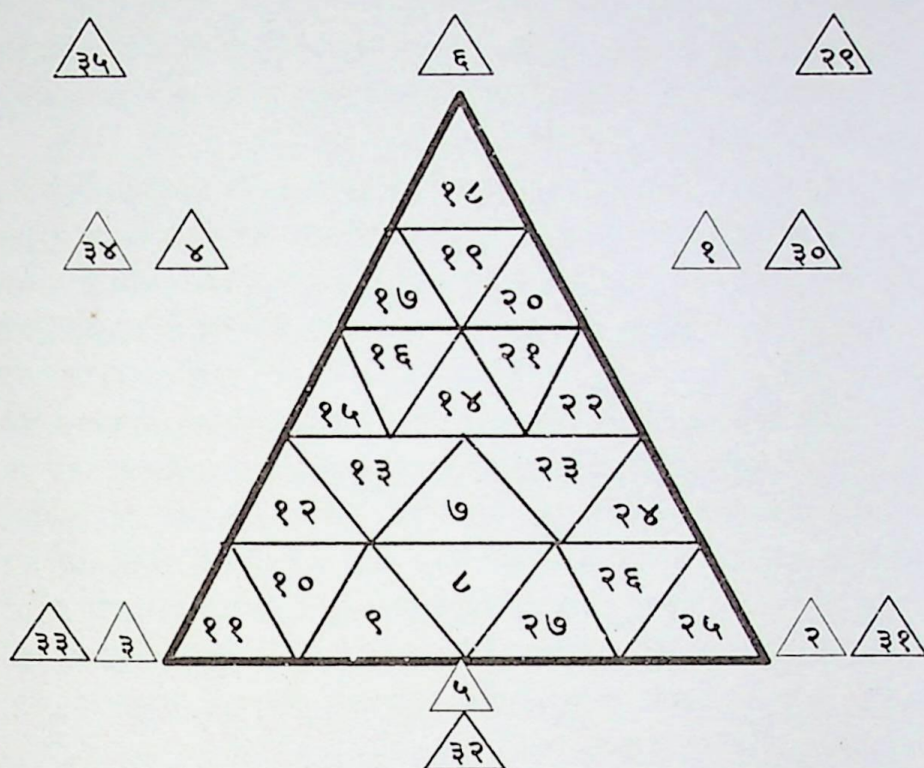
(यंत्र संख्या 46)

यों मंगल एक मृत पिण्ड है अर्थात् उसमें संलयन या विखण्डन जैसी क्रिया नहीं होती इसीलिये वह ग्रह है किन्तु उसके धरातल से टकराकर लौटने वाली सूर्य की किरणों की प्रकृति (तासीर) में परिवर्तन हो जाता है। सूर्य जहां जीवनदाता है, मंगल बल, पौरुष और साहस का कारक माना जाता है। शुक्र ग्रह व्यक्ति के वीर्य का कारक है। किंतु मंगल उसमें स्पर्श का कारक बनता है। शुक्र ग्रह की कुण्डली में निर्बल स्थिति, प्रजनन अंगों से संबंधित स्थान पर रहने से व्यक्ति के कालान्तर में नपुंसक अथवा हीनवीर्य हो जाने की सूचना है, किन्तु मंगल की सन्तान संबंधित स्थानों की संगति में निर्बलता व्यक्ति में पौरुष की कमी का, सन्तान उत्पन्न करने में संभावित अयोग्यता का सूचक बनता है।

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार शुक्र और मंगल को ऋतु और रेतस् कहा जाता है। ऋतु का अर्थ होता है रज—यही मंगल स्त्रियों में रजः प्रवर्तन का कारण बना करता है। स्त्रियों में प्रथम बार रजः प्रवर्तन चंद्र और मंगल की विशेष प्रकार की स्थिति

के कारण होता है और इसकी स्त्री के रजःस्वला होते रहते में प्रमुख भूमिका रहा करती है।

ज्योतिष का यह आग्रह है कि सन्तान के लिये जब तक मंगल और शुक्र का परस्पर या पंचम् स्थान के साथ किसी प्रकार का संबंध न हो, तब तक व्यक्ति को सन्तति सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

मेरा अपना विचार है कि पुत्र सन्तान देने में गुरु का विशेष प्रभाव रहता है। गुरु एक आध्यात्मिक ग्रह है और वह प्रबल रहकर यदि ग्यारहवें स्थान को देखता भी रहता है तो पांच पुत्र दिया करता है क्योंकि पुत्र भौतिक लाभ न रहकर आध्यात्मिक लाभ अधिक रहता है तथा पुत्र व पिता के संबंध भी आध्यात्मिक अधिक रहते हैं।

अस्तु मंगल क्रूर ग्रह है, जैसे हमारी सेना का मुख्य सेनापति। अनुशासन और अहंभाव की उसमें कमी नहीं, यह संतान का कारक तो है ही, भूमि का और धन का भी कारक होता है यद्यपि संतान का एकमेव कारण मंगल नहीं होता फिर भी इसके बलवान् होने से इससे मिलने वाले लाभ व्यक्ति को प्राप्त होते ही हैं। यह धन स्थान, आय, पंचम, नवम स्थानों को अपनी निर्बलता के कारण दूषित कर रहा हो अथवा चौथे, छठे, आठवें, बारहवें स्थानों को अपनी स्थिति के कारण विकृत कर रहा हो, तो व्यक्ति को अनेक प्रकार के कष्ट दिया करता है। ॠणी, रोगी, भूमिहीन, सन्तानहीन दरिद्र कर देता है।

स्वाभाविक है ऐसी अवस्था में मंगल को यदि बल दिया जा सके, तो इन विपरीत प्रभावों में कमी आयेगी। कोई भी ग्रह प्रतिकूल प्रभाव तभी दिया करता है जब वह निर्बल हो और निर्बलता में नीच का, अस्त, शत्रुग्रही, अकारक स्थान में स्थिति आदि माने जाते हैं।

जो लोग मंगल के कारण इस प्रकार की विषमताओं से पीड़ित हैं उनको यह प्रयोग करना चाहिए। वास्तविक रूप में हमारे इन कष्टों के पीछे मंगल का सक्रिय योगदान नहीं है क्योंकि ग्रह तो अपने-आप में निष्क्रिय हैं। पर ये हमारे जीवन के साथ जुड़े संगतियों की सूचना मात्र दिया करते हैं। वैसे भी सन्तान कारक होने के कारण इसका अनुष्ठान लाभप्रद रहता है।

विधि—चित्र में दिये गये डिजाइन के अनुसार तांबे के पत्र पर यह आकृति बनवा लेनी चाहिए। पत्र तिकोना रहे और उसमें ये अंक खुदवा लिये जायें तो पूजन में सुविधा रहेगी अन्यथा ये लिखे ही जायें यह आवश्यक नहीं। पत्र बड़ा हो तो जिस अंक के लिये जो नाम दिया है उसका प्रथम अक्षर ऊपर अनुस्वार लगाकर खुदवा लिया जाए।

यंत्र का पूजन और प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद इसको सामने रखकर जप किया जाए। पूजा करने की सामान्य विधि में षोडश मातृका, नवग्रह और पंच देवों की तथा प्रारम्भ में गणपति की पूजा करनी पड़ती है। इनके मंत्र आते हों तो ठीक अन्यथा इनका नाम लेकर ही पूजा के रूप में अक्षत, पुष्प प्रसाद चढ़ा दिया जाता है। धूप और दीप तो सबके लिये सामान्य रूप से प्रस्तुत रहता ही है।

मंगल यंत्र की पूजा की पद्धति—यंत्र को पंचामृत एवं शुद्ध जल से स्नान कराकर रख दें। हाथ में गंधाक्षत लेकर पूर्व में वामार्य नमः नमः के साथ कही गई दिशा में गंधाक्षत्, रोली मिले चावल फेंकने होते हैं। आग्नेय कोण में ज्येष्ठायै नमः, दक्षिण में रौद्रयै नमः नैऋत्य में काल्यै नमः, पश्चिम में विकरिण्यै नमः वायव्य कोण में बल विकरिण्यै नमः, उत्तर में बल प्रमथिन्यै नमः, ईशान में सर्वभूतदमन्यै नमः, सामने (मध्य में) मनोन्मन्यै नमः।

विनियोग—अस्य श्री मंगल मंत्रस्य विरुपाक्ष ऋषि गायत्री छन्दः धरात्मजो भौमो देवता है बीजः हँसः शक्ति सर्वेष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

पीठ शक्तियों का पूजन करके मंगल गायत्री का जप करते हुए मंगल का आवाहन करें। मंगल गायत्री इस प्रकार है—"अंगारकाय विद्महे शक्ति हस्ताय धीमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्"।

यंत्र में जहां एक का अंक है वहां ओम् ओम् हृदया नमः हृदय श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नम यह बोलकर रोली मिले चावल तथा फूल चढ़ा दें। श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः आगे के पदों में जोड़ा जायेगा। ओम् हां शिरसे स्वाहा शिरः, बोलकर दो के अंक पर रोली चावल फूल चढ़ा दे, ऐसे ही आगे भी चढ़ता रहे। ओम् शिरवाय हँ वषट् शिखाः ओम् सः कवचाय हुम् कवः, ओम् खननेत्रत्रगाय वौषट् नेत्रत्रयः, ओम खः अस्राय फट् अस्त्र।

इसके बाद यंत्र में लिखे अंकों की पूजा करें श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः सर्वत्र जोड़ा जायेगा तथा रोली-पुष्प मिले चावल चढ़ाये जायेंगे। सात के अंक पर मंगलाय नमः मंगलः, आठ पर भूमिपुत्राय भूमिपुत्र, नौ के अंक वाले कोष्ठक में ऋण हंत्रे नमः ऋणहन्तृः, दस के अंक में धनप्रदाय नमः धन प्रदः, ग्यारह के अंक पर स्थिरासनाय ममः स्थिरासनः, बारह के अंक वाले कोष्ठक में महाकायाय नमः महाकायः, तेरह के अंक वाले कोष्ठक में सर्वकर्म-विरोधाय नमः सर्वकर्मविरोधः, चौदह के अंक पर लोहिताय नमः लोहितः, पन्द्रह के अंक के कोष्ठक में लोहिताक्षाय नमः लोहिताक्षः, सोलह के अंक पर सामगाय नमः सामगः सत्रह के अंक पर धरात्मजाय नमः धरात्मजः, अठारह के अंक पर कुजाय नमः कुजः, उन्नीस के अंक पर भौमाय नमः भौमः, बीस के अंक पर भूतिदाय नमः भूतिदः, इक्कीस के अंक

वाले कोष्ठक में भूभिनन्दनाय नमः भूमिनन्दनः, बाईस के अंक में अंगारकाय नमः अंगारकः, तेईस के अंक में यमाय नमः यमः, चौबीस के अंक वाले कोष्ठक में सर्व रोग प्रहरिणो, पच्चीस पर सर्ववृष्टि कर्वे नमः, सर्ववृष्टिकर्त्रे., छब्बीस के अंक में वृष्टिहत्रें नमः वृष्टिहर्तृः, सत्ताईस के अंक वाले कोष्ठक में सवंरोगापहारकाय नमः सर्वरोगापहारक श्री पादुकां पूजयामि नमः।

यंत्र कोष्ठकों की पूजा करने के बाद आठ देवियों का आठों दिशाओं में पूजन करें। पूर्व में ब्राह्मयै (ब्राह्मयै नमः, आग्नेय में माहेश्वर्यै नमः, दक्षिण में कौमार्य नमः, नैऋत्य वैष्णव्यै नमः, पश्चिम में वाराह्य नमः, वायव्य में इन्द्राण्यै नमः, दक्षिण में चामुंडायै नमः ईशान में महलक्ष्मयै नमः।)

इसके बाद अट्ठाईस के अंक से क्रमशः दिक् पतियों का पूजन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार है। अट्ठाईस के अंक पूर्व दिशा में लं इन्द्राय नमः, उन्तीस आग्नेय कोण में रं आग्नेय नमः, तीस दक्षिण में मं यमाय नमः, नैऋत्य में क्षंनिऋतये नमः, व वरुणाय नमः, यंम वायवेय नमः, त्तु कुबेराय नमः, हंईशानाय नमः, ईशान पूर्व बीच में आं ब्रह्मणे नमः, नैऋत्य पश्चिम के बीच में हीं अनन्ताय नमः।

इसके बाद इसी क्रम से इन दिक्पालों के आयुधों का पूजन किया जाए। आयुधों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं वं वज्राय नमः, शर्ण शक्तये नमः, दं दण्डाय नमः, खं खड्गाय नमः, पां पाशाय नमः, अं अंकुशाय नमः, गं गदायै नमः, त्रिं त्रिशूलाय नमः, पं पद्यने नमः, चं चक्राय नमः। इन आयुधों के भी गंध अक्षत पुष्प समर्पित करते हुए यंत्र में दिक्पालों के जो अंक लिखे हैं उन्हीं में चढ़ावे।

इसके बाद षोडशोपचार से यंत्र का पूजन करे। षोडश पचार की विधि अन्यत्र लिख दी गई है।

इसके बाद जप करना होता है, किन्तु जप के पहले एक बार अर्ध्य और देना होगा। यद्यपि अर्ध्य हाथ में (लोकाचार में हाथ धुलने की क्रिया को अर्ध्यदान कहते हैं) दिया जाता है पर यहां अर्ध्य सारे यंत्र पर दिया जाएगा। अर्ध्य के लिए ताम्बे के पात्र में गंध, पुष्प, अक्षत रखकर नमाज पढ़ने की तरह घुटने मोड़कर बैठते हुए यंत्र पर जल चढ़ावें और यह यंत्र बोलें—

भूमिपुत्रमहातेजः स्वेदोम्दव पिनाकिनः,
सुतार्थी त्वां प्रपन्नो हॅ गृहाणार्घ्य नमोस्तुते।
रक्त प्रवाल संकाशजपाकुसुमसन्निभ,
महीसुत महाबाहो गृहाणार्घ्य नमोस्तुते।।

जप करने से पहले न्यास करें। न्यास विधि मूलमंत्र से सम्पन्न करनी है—

करन्यास—ओम् ओम् अंगुष्ठाभ्यां नमः, ओम् हाम् तर्जनीभ्यां नमः,

ओम् हम् मध्यमाभ्यां नमः, ओम् सः अनामिकाभ्यां नमः, ओम् खं कनिष्ठाभ्यां नमः, ओम् खः करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः।

षडंग न्यास—ओम् हृदयाय नमः, ओम् हां शिरसे स्वाहा ओम् हम् शिरवायै वषट् ओम् सः कवचाय हुम, ओम् खं न्त्रत्रया चौषठ ओम् खः अस्त्राय फट्।

मूल मंत्र माला जपने का है—

'ओम् हां हं सः खं खः'

मंत्र जप करने के बाद मंगल के जो इक्कीस नाम बतलाये हैं, उनसे इक्कीस परिक्रमा लगाये और साष्टांग प्रणाम कर खैर की लकड़ी के अंगार कोयले पूर्व पश्चिम तीन समानान्तर रेखा खींचकर बायें पैर से उनको निम्नलिखित मंत्र बोलता हुआ मिटा दे।

दुःख दौभाग्य नाशाय पुत्रसन्तान प्राप्तये।
कृतं रेखात्रयं वामपादेनैतत्प्रमार्जये।
ऋण दुःख निताशाय मनोभीष्टार्थ सिद्धये।
मार्जयाम्यासिता रेखास्तिस्रः जन्मत्रयोम्दवाः।।

रेखामार्जन करके हाथ में पुष्पांजलि लेकर ये मंत्र पढ़े—

धारणी गर्भसंभूतं विद्युत तेजः समप्रभम्।
कुमार शक्ति हस्तं च मंगलं प्रणमाम्यहम्।।
ऋणहर्ते नमस्तुभ्यं दुःखदारिद्रयनाशिने।
नमामि द्र्योतमानाय सर्वकल्याणकारिणे।।
देवदानव गंधर्व यक्ष किन्नरपन्नगाः।
सुखं यान्ति यतस्तस्मै नमौ धरणिसूनवे।
यो वक्रगतिमापन्नो नृणां विघ्नं प्रयच्छति।
पूजितः सुखसौभाग्यं तस्मैक्षमा सूनवे नमः।
प्रसादं कुरुमेनाथ मंगलप्रद मंगल!
मेषावाहन रुद्रात्मन् पुत्रान्देहि धनं यशः।।

पुष्पांजलि यंत्र पर समर्पित कर दे।

यह प्रयोग मार्गशीर्ष अथवा वैशाख के माह से प्रारम्भ किया जाता है। मंत्र षड्क्षर होने से इसका पुरश्चरण छः लाख जप में सम्पन्न होता है। खैर की लकड़ी अथवा बिल्वपत्र की लकड़ी में तेल, घी और चीनी से हवन करना चाहिए।

उपासना चाहे यंत्र की हो अथवा मंत्र की इसमें षोड्श, अथवा पंच उपचार से पूजन करने की परम्परा है। पंचोपचार में गंध, पुष्प-धूप, दीप और नैवेद्य (प्रसाद) आते हैं, षोड्शोपचार में जिन वस्तुओं का समावेश होता है उन्हें क्रमशः अर्पित करने के मंत्र दिये जा रहे हैं।

ध्यान के लिए कोई मंत्र या श्लोक दिया गया हो तो उसे बोलकर अन्यथा मूल मंत्र मन में बोलकर हाथ जोड़ प्रार्थना करता हुआ आवाहन् करे–

आवाह्न—

देवेश भक्ति सुलभ परिवारसमन्वित।

यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् देव इहादह।

मूल मंत्र बोलकर देवताओं के नाम के बाद 'म्' लगाकर 'आवहयामि स्तापयामि'।

आसन—

देवदेव महादेव जगद्वंध प्रियेश्वर।

आसनं दिव्यमौशान दास्येडे परमेश्वर।

अपराधो भवत्येव येवसेवकस्य पदे-पदे।

को परः सहतां लोके केवलं स्वामिना विना।।

भूर्भुवः स्व–'आसनं प्रसारयामि' आस्यताम् देव !

पाद्य—

यद् भक्ति लेश संस्पर्शात् परमानंदसंभव।

तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये।

–पाद्योः पादयं कल्पयानि।

अर्घ्य—

तापत्रय हरं दिव्यं परमानन्द लक्षणम्।

तापत्रय विनिर्मुक्तं तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्।

–हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि।

अचामनीय—

देवानां देवतायैते वेदानां देवतात्मने।

आचमं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धि हेतवे।।

–मुखे आचमनीयं समर्पयामि।

स्नान—

गंगा सरस्वतीरेवा पयोषणि नर्मदा जलैः।

स्नापितोसिमयादेव तथा शान्ति कुरूष्वेमे।।

–सर्वांगे स्नानं समर्पयामि।

वस्त्र—

सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जा निवारणे।

मयैवापादिते तुभ्यं वाससी प्रति गृह्यताम्।।

–वस्त्रयुगलं परिधापयामि।

गंध—

श्रीखण्ड चन्दनंदिव्यं गंधाढ्य सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रति गृह्यताम्।।

—गंधं समर्पयामि।

अक्षत—

अक्षताश्रव सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः शुशोभिताः।
मया निवेदिताः भक्तया गृहाण परमेश्वर।।

—अक्षतान्समर्पयामि।

पुष्प—

माल्यादीनि सुगंधीनि मालत्यादीनिवै शिव।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर।।

—शिरसि पुष्पाणि समर्पयामि।

धूप—

वनस्पति रसोद्भूतो गंधद्यओ गंध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम्।

—धूपमू आघ्रापयामि।।

दीप—

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतथस्तिमिरापहः।
सबाभ्ह्ययंतरं ज्योतिः दीपोयं प्रतिगृह्यताम्।

—दीपं दर्शयामि।

नैवेद्य—

सत्पात्र सिद्धं सुहविः विविधानेक भक्षणम्।
निवेदयमि देवेश सानुगाय गृहाण तत्।

—नैवेदयं निवेदयामि।

आयमन—

नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्ति करं परम्।
अखण्डानन्द सम्पूर्णगृहाण जलमुत्तमम्।।

—मुख प्रक्षालनाय जलं समर्पयामि।

तांबूल—

पूंगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिमियुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।

—मुखशुद्धयर्थे तांबूलं समर्पयामि।

फलं—

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेत् जन्मनि जन्मनि।

—फलं समर्पयामि।

यह सोलह उपचार हो गये। आरती करने का महत्व भी पूजन पद्धति में माना गया है। यों हिन्दी भाषा में आरती गान करते हुए आरती करने में कोई दोष नहीं, पर उससे पहले यह मंत्र बोल लें—

आरात्रिक—

कदलीगर्भ संभूतं कर्पूरंच प्रदीपितम्।
आरात्रिक मर्हे कुर्वे पश्य मे वरदो भव।।

पुष्पांजलि—

नाना सुगंध पुष्पाणि यथाकालोद्भवानि।
पुष्पांजलिर्मया दत्ता गृहाण परमेश्वर।।

क्षमापन—

अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशंमया।
दासोयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर।
मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च यद् भवेत्।
तत्सर्व क्षम्यतां देवप्रसीद परमेश्वर।
भूमौ स्खलित पादानां भूमिरेवावलंबनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं विभो।
यदुक्तं यदि भावेन पत्र पुष्पं फलं जलम्।
निवेदितं च नैवेद्यं गृहाणत्वनुकम्पया।

ध्यातव्य—प्रायः पूजा में वरुण देवता का प्रतीक कलश रखा जाता है। यह कलश साधक के बायें हाथ अर्थात् देवता के दायें रखा जाता है। कलश के नीचे कोई धान्य रख देते हैं, जिससे वह लुढ़के नहीं। गंध या चन्दन अंगूठे और कनिष्ठा से चढ़ाया जाता है। दीपक धरती पर नहीं किसी आधार पर इतना ऊंचा रखा जाता है जिससे देव मूर्ति अथवा यंत्र के मुख पर प्रकाश फैलाता रहे। दीपक घी का हो, तो साधक के बायें हाथ और तेल का हो तो साधक के दाहिने हाथ। पुष्प देवता के मस्तक पर और धूप या अगरबत्ती सामने अर्पित किए जाते हैं। प्रसाद किसी दोने या अन्य पात्र में रखकर चढ़ाये जाते हैं। शिवजी को अक्षत नहीं चढ़ाते, फल सड़े

हुए या बुझे हुए काम में न लें। वस्त्र के नाम पर चोली चढ़ाने का प्रचार है, किन्तु देवता को दो वस्त्र चढ़ाये जाते हैं, जो अपनी श्रद्धा के अनुसार रहते हैं।

दधिवामन यंत्र प्रयोग—वैष्णव मार्गी साधना में दधिवामन यन्त्र का प्रयोग चमत्कारी माना जाता है। यंत्र की अनुकृति में संख्याएं पूजन के क्रम के लिये हैं। यह यंत्र चांदी पर खुदवाना ठीक रहता है।

मंत्र है–

"ओम् नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहाः"

विनियोग—अस्य मंत्रस्य इन्दु ऋषिः विराट् छन्दः दधि वामनो देवता सर्वेष्ट सिद्धयर्थ जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—इन्दु ऋष नमः शिरसि, विराट् छन्दसे नमः मुखे, दधिवामन देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे।

ध्यान— *मुक्तागौर नवमणिलसद् भूषणं चन्द्रसंस्थं,*
भृंगाकारैरलकनिकरैः शौभिवअत्रारविन्दम्।
हस्ताब्जाम्यां कनककलशं शुद्धतोयाभिपूर्णम्,
दव्यन्नाढ्यं कनकचषकं धारयन्तं भजामः।

मंगल की पूजा पद्धति में बताये गये क्रम से गणपति, पोडश मातृका, नवग्रह, पंच देवों की सामान्य पूजा करके यंत्र की पूजा करे।

इसकी नौ पीठ शक्तियों का पूजन करने का क्रम इस प्रकार रहेगा।

पूर्व में–विमलायै नमः, आग्नेय कोण में उत्कर्षण्यै नमः, दक्षिण में ज्ञानायै नमः, नैऋत्य कोण में क्रियावै नमः, पश्चिम में योगायै नमः, वायव्य कोण में प्रह्व्यै नमः, उत्तर में सत्यायै नमः, ईशान कोण में ईशानायै नमः, मध्य में अनुग्रहार्य नमः।

इस पूजन में हाथ में चावल गंध मिले और पुष्प अथवा केवल गंध मिले चावल उन दिशाओं में फेंक दिये जाते हैं।

यंत्र के मध्य में लिखे षट्कोणों में–एक के अंक वाले कोष्ठक में ओम हृदयाय नमः, दो अंक में नमः सिर से स्वाहा, तीन के अंक में विष्णवे शिखायै वषट्, सुरपतये कवचाय हुम्–चार वाले अंक में, महाबलाय नेत्रत्रयाय वौषठ् पांच वाले अंक में, स्वाहा अस्राय फट् छ वाले अंक में।

अगले क्रम में आठ दल वाले कमल पत्र में पूजा करना है। इसमें क्रम पहले दिशा फिर कोण इस क्रम से रहेगा। सात वाले अंक में पूर्व दिशा में वासुदेवाय नमः, आठ के अंक में संकर्षनाय नमः, नौ के अंक में पश्मिाय नमः दस के अंक में अग्निरुद्धाय नमः, कोणों में ग्यारह के अंक में शान्त्यै नमः, नैऋत्य कोण में श्रियै नमः, वायव्य में सरस्वत्यै नमः, ईशान में रत्यै नमः।

इन्हीं पत्रों में इसी क्रम से फिर पूजा करनी है। सात के अंक में ध्वंजाय नमः, दक्षिण नौ के अंक में वैनतैयाय नमः, पश्चिम में कौस्तुभाय नमः, उत्तर में
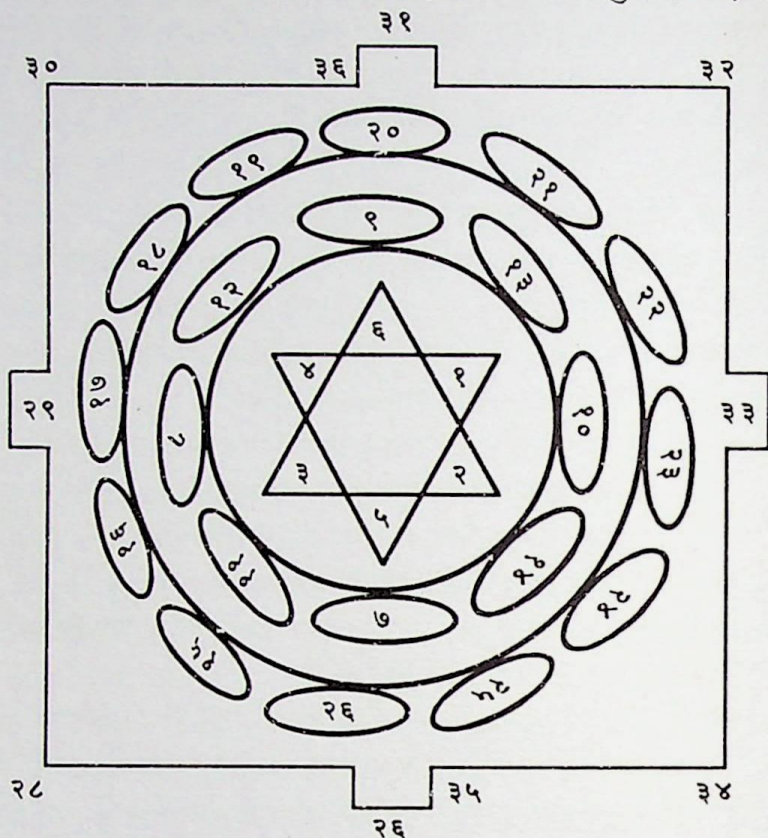
(यंत्र संख्या 47)

बनमालिकाये नमः कोणों में ग्यारह के अंक से शंखाय नमः, चक्राय नमः, गदायै नमः, शांर्गाय नमः।

इस अष्टदल कमल से बाहर बारह पत्रों वाले कमल में क्रमशः पूजा करनी होगी। सुविधा के लिये पत्रों में अंक लिख दिये गये हैं। पन्द्रह से प्रारम्भ होगा—केशवाय नमः सोलह में नारायणाय नमः, सत्रह के अंक वाले पत्र में माधवाय नमः, अठारह के अंक वाले पत्र में गोविन्दाय नमः, उन्नीस में विष्णवे नमः बीस में मधुसूदनाय नमः, इक्कीस में त्रिविक्रमाय नमः बाईस में वामनासय नमः तेईस में श्रीधराय नमः, चौबीस में हृषीकेशाय नमः पच्चीस में पद्मनाभाय नमः, छब्बीस में दामोदराय नमः।

इन कमलों से बाहर चौकोर खाने में क्रमशः दस दिक्पालों की फिर उनके

आयुधों की पूजा करे। इनके नाम मंगल की पूजा विधि में लिख दिये गये हैं। मंत्र महार्णव में इस प्रयोग के पहले चमत्कारी लिखा गया है। जो लोग वेदवादी एवं वैष्णवमार्गी हैं, उनके लिये यह प्रयोग वास्तव में चमत्कारी है। जितने भी सात्विक प्रयोग हैं, वे सब इससे संभव हैं। भौतिक जीवन में सुख शांति प्राप्त करने एवं कालान्तर में भवबंधन से मुक्त होने का प्रशस्त राजमार्ग यह यंत्र बनता है। तीन लाख जप करने से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। जप का दशांश हवन परंपरा के रूप में इसमें भी किया जाएगा।

गणपति का चमत्कारी प्रयोग

रविवार पुष्य नक्षत्र के दिन सफेद आक की जड़ लाकर उससे गणपति की मूर्ति बनाकर घर में स्थापित कर ले। संभव हो तो चांदी की कटोरी में दूध डालकर उसमें स्थापित कर दे और सफेद फूलों से पूजन करे और उनको नित्य—

''गं गणपतये सर्वविघ्नराय सर्वाय सर्वमुखे लम्बोदराय ह्रीं गं नमः।

इस मंत्र की एक माला जपकर अर्पित कर दे। दूध कच्चा ही काम में आयेगा और प्रतिदिन दूध बदल दिया जाएगा।

गणपित का यह पूजन व्यक्ति को स्वयं ही करना चाहिए। जप के लिये माला सफेद चंदन की रहे। जहां गणपति को स्थापित किया जाए उस स्थान पर पर्दा (सफेद रंग का, रेशमी हो तो अच्छा) लगाये रहे। इस प्रकार की सिद्ध वस्तुओं को अपवित्र एवं संस्कारहीन व्यक्तियों की दृष्टि से बचायें। यद्यपि ये देवमूर्तियां हैं, इनकी शक्ति अधिक होती है तो भी अशुद्ध लोगों का मल तो बिखरता ही है।

टिप्पणी—धन प्राप्ति के लिये लक्ष्मी की उपासना व्यावहारिक बात है। किन्तु लक्ष्मी के सीधे मंत्रों की अपेक्षा उसकी शक्तियों के स्वरूपों की अथवा उसके संयुक्त मंत्र की उपासना अधिक उपयोगी रहती है। कुबेर, गणेश, लक्ष्मी, नृसिंह, लक्ष्मी विनायक, स्वार्णाकिर्षण भैरव आदि मंत्रों की उपासना अधिक उपयुक्त रहती है।

धन प्राप्ति के लिये लक्ष्मी विनायक यंत्र

विधि—इस लक्ष्मी विनायक यंत्र को ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराकर पूजा करे। पूजा की सामान्य विधि ऊपर के प्रयोगों में लिख दी गई है। जो विशिष्ट पद्धति है वह इस प्रकार है—नौ पीठ शक्तियां पूर्वादि क्रम से तीव्रायै नमः, चालिन्यै नमः, नन्दायै नमः, भोगदायै नमः, कामरूपिण्यै नमः उग्रायै नमः, तेजोवत्यो नमः, सात्यायै नमः, आठों दिशाओं में पीठ शक्तियों का पूजन करके सामने मध्य मे विघ्नाशिन्यै
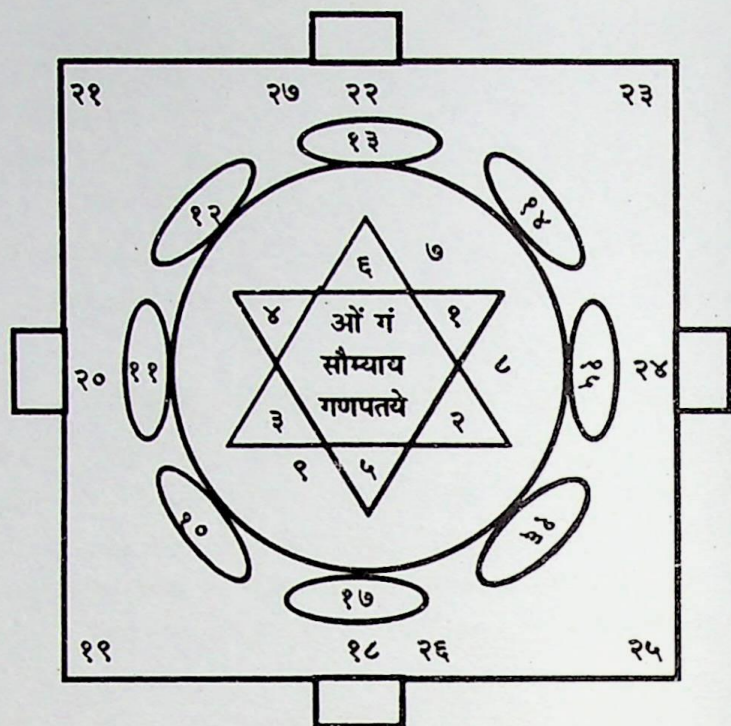
(यंत्र संख्या 48)

नमः।

इसके बाद षट्कोण के कोणों में लिखे गये अंकों में—श्रां गां हृदयाय नमः एक अंक वाले कोष्ठक में श्रीं गीं शिरसे स्वाह दो के अंक में श्रूं गूं शिखायै वषट् तीन के अंक में श्रैं गैं कवचाय हुम् चार के अंक में श्रौं गौं नेत्र त्रयाय वौषट् पांच वाले अंक में श्र, गः श्रस्राय फट्।

सात वाले अंक पर शंखाय नमः, आठ वाले अंक पर पद्मने नमः, नौ वाले अंक पर निधये नमः।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस पूजन में चावल, रोली, पुष्प चढ़ाये जाते हैं। यंत्र पूजा से पहले यंत्र की व षोडश मातृकादि की पूजा कर लेनी चाहिए यह विधि मंगल यंत्र की पूजाविधि में लिख दी गई है।

बाहर अष्टदल कमल के पत्रों में दस के अंकवाले पत्र में बलायै नमः, ग्यारह के अंक में विमलायै नमः, बाहर के अंक में कमलाय नमः, तेरह के अंक में वनमालिकाये नमः, चौदह के अंकवाले पत्र में विभीषिकायै नमः, पन्द्रह के अंकवाले पत्र में भालिकायै नमः, सोलह के अंकवाले पत्र में शांकर्ये नमः, सत्रह के अंक में वसुवालिकायै नमः।

अब चतुष्कोण में अट्ठारह के अंक से प्रारंभ करके दिक्पालों का फिर उसी क्रम से उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए।

विनियोग—अस्य श्री लक्ष्मी विनायक मैत्रवस्य अन्तर्यामी ऋषिः गायत्री छन्दः लक्ष्मी विनायको देवता श्री बीजम् स्वाहा शक्तितः ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोग।

ऋष्यादि न्यास—अन्तर्यामी ऋषये नमः शिरसि, गायत्री छन्द से नमः मुखे, लक्ष्मी विनायक देवतायै नमः हृदये, श्रीं बीजाय नमः, गुह्यो, स्वाहा शक्तये नमः पादयोः विनियोगाय नमः सर्वांगे।

करन्यास—श्रां गां अंगुष्ठाभ्यां नमः श्रीं गीं तर्जनीभ्य नमः श्रूं गूं मध्यामाभ्या नमः, श्रैं गैं अनामिकाभ्यां नमः, श्रौं गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, श्रः गः करतल करपृष्ठाभ्यां नमः।

षडंगन्यास—श्रां गां हृदयाय नमः, श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, श्रूं गूं शिखायै वषट् श्रैं गैं कवचाय हूम्, श्रौं गौं नेत्रत्रय वौषट्, श्रः गः अस्त्राय फट्।

ध्यान—

दनताभये चक्रवरौ दधानं,
कराग्रगं स्वर्णघटं त्रिनेत्रम्।
घृताब्जया लिंगित्रमब्धिपुत्र्या
लक्ष्मी गणेशं कनकाभ मीडे।।

जपमंत्र : श्रीं गं सौभ्याय गणपतये वरवरद सर्वनं मे वशमानय स्वाहा।"

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

(यंत्र संख्या 49)

विशेष—यंत्र की षोड्शोपचार से पूजा, न्यास, ध्यान आदि का क्रम पूर्व प्रयोगों में लिखित विधि से पूरा कर लिया जायेगा। इसका पुरश्चरण चार लाख जप से होता है। इस मंत्र में वशीकरण का उल्लेख है किन्तु यह मात्र वशीकरण के लिये

नहीं किया जाता। इसका प्रमुख प्रयोग धन प्राप्ति के लिये किया जाता है। वशीकरण भी इससे होता है इसकी न्याय विधि में भी परिवर्तन है, किन्तु उसका मूल कारण है गणपति का लक्ष्मी के साथ मिला रूप।

विधि—इस यंत्र को नये कपड़े पर खड़िया से लिखकर पीछे की तरफ प्रेत-ग्रस्त रोगी का नाम लिख दें। इस कपड़े को किसी मंत्र से तपाने के बाद रखकर गले में पहना दें।

(यंत्र संख्या 50)

मूलरूप में यह यंत्र ईश्वर वशीकरण है किन्तु इसी को किसी तिनके से रोटी पर लिखकर फिर इस रोटी को सेंककर सास या ससुर को खिला दे। जिसको खिलाना हो उसी का नाम वश में हो जाने की कामना करता रहे। सास वाली सास को ही और ससुर वाली ससुर को ही खिला दे।

स्तम्भन यंत्र वशीकरण

७२	७९	२	८
७	३	६२	७५
७०	७३	९	१
४	६	७४	७७

(यंत्र संख्या 51)

ऊपर लिखा यंत्र पुराने सेमल के रस में चीनी मिलाकर कांसी की थाली में लिखें, फिर इसे धोकर पी लें तथा इसी यंत्र की दूसरी प्रति हल्दी से कांसी या तांबे के पात्र पर सिरहाने रख लें और संभोग के समय देखता रहे तो शुक्र स्तंभित होता है।

सर्वरक्षाकर यंत्र
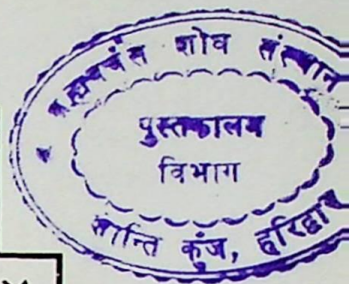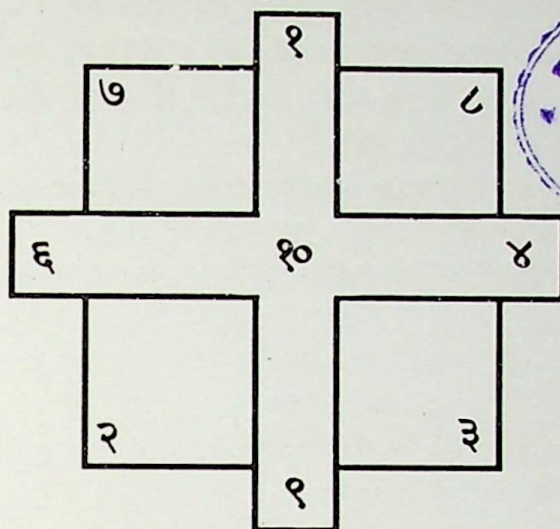
(यंत्र संख्या 52)

सर्वरक्षाकर यंत्र अष्टगंध से भोजपत्र पर लिखकर पंचोपचार से पूजन कर ताबीज में रखकर पीले या रेशमी धागे से हाथ में बांध लें फिर प्रतिदिन इस ताबीज को लेकर अपने सामने रखकर अगरबत्ती जलाकर--

"परब्रह्म परमात्मन् ममं शरीर रक्षां कुरु कुरु पाहि-पाहि स्वाहा"।

इस मंत्र की एक माला प्रतिदिन जपें। यदि ताबीज को रोज-रोज खोलना संभव न हो तो केवल अगरबत्ती का धुआं ताबीज के लगा लें।

वशीकरण यंत्र

५९	६६	२	८
७	३	६३	६२
६५	६०	९	१
४	६	६९	६४

(यंत्र संख्या 53)

इस यंत्र को पुष्य नक्षत्र में स्त्री के दूध से भोजपत्र पर लिखे पंचोपचार से पूजन करके अपने पास रखे, तो अभीष्ट व्यक्ति वशीभूत होता है।

अथवा इसी यंत्र को कफन या मृत व्यक्ति के कपड़े पर धतूरें के रस से लिखें और चाल–3, 63, 6, 64, 65, 6, 66, 59, 7, 8, 62, 9, 61, 2, 60, 1 इस प्रकार रखें तथा लोहे की कलम से लिखकर–

"ओम् नमो भगवते रुद्राय...(अभीष्ट व्यक्ति का नाम) गृह्ण गृह्ण पंच पंच त्रासय त्रासय त्रोटय नाशय नाशय पशुपति राज्ञापयति ठः ठः।"

इस मंत्र की ग्यारह माला जपकर इस यंत्र को श्मशान में जमीन खोदकर गाड़ दें।

स्वप्न मीमांसा

साधना के क्षेत्र में किसी भी प्रयोग को प्रारम्भ करने से पहले अनेक प्रकार के प्राथमिक तथा अवान्तर प्रयोग करने की व्यवस्था दी गई है। साधक सबसे पहले गुरु का चयन करता है, गुरु शिष्य की पात्रता को परखकर उसे मंत्रोपदेश करता है। मंत्र और साधक के संबंधों का विश्लेषण करता है, फिर उपर्युक्त मंत्र का निर्देश करता है। इसी क्रम में स्वप्न साधना भी आती है। जिसमें साधक मंत्र साधना के फल, एवं अनुकूलता के बारे में पूर्ण ज्ञान करना चाहता है। स्वप्न लेने की आवश्यक विधि जानने से पूर्व हम यह जान लें कि स्वप्न हैं क्या और क्या इनको भविष्य ज्ञान के लिये उपयुक्त माध्यम बनाया जा सकता है ?

मनोविज्ञान की पश्चिमी पद्धति स्वप्नों की सत्ता और शक्ति पर विश्वास करती है तथा यह मानती है कि स्वप्न निद्रा की तरह प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य प्रकृति है। इनमें कभी-कभी भावी घटनाओं का आभास मिल जाया करता है, किंतु इनको भावी के पूर्वाभास का माध्यम बनाने में वे विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे इस प्रकार की पद्धति से न परिचित हैं न विश्वास करते हैं। दूसरा अन्तर यह है कि भारतीय स्वप्नशास्त्र घटनाओं को अविकल रूप में देखने वाले स्वप्न का फलित नहीं बतलाता प्रयुक्त प्रतीकात्मक स्वप्नों को ही विवेचना का विगत मानता है।

पश्चिम और भारतीय मान्यताओं में एक मूलभूत अन्तर यह भी है कि वे स्वप्न को दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति मानते हैं अर्थात् स्वप्न उनकी दृष्टि में नितान्त मनोजगत् की घटना है, व शरीर की व्यवस्था से प्रभावित नहीं होता, जबकि हम स्वप्नों के मूल कारणों में हमारे स्थूल देह की गति एवं असंगति को भी मानते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अवचेतन मन अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति काल्पनिक अवस्था में किया करता है। मूलतः जब हमारे ज्ञानोपकरण अपने बहिर्मुखी कार्य व्यापार से विरत हो जाते हैं तब मन की शक्ति केन्द्रित रहने के कारण प्रखर हो जाती है और ऐसी अवस्था में वह अपनी इच्छानुसार कल्पना वितान बुना करता है।

मन बहुत शक्तिशाली है, ज्ञान के उपकरण ज्ञानेन्द्रियां—अपने आप में निष्क्रिय माध्यम हैं। मन ही उनमें चेतना का प्रवाह किया करता है और उनके ज्ञान को अनुभव का रूप दिया करता है अर्थात् मन भोक्ता हुआ करता है, इसलिये सारे उपभोग मन की महिमा है। इसके संपृक्त होने पर ही इन्द्रियजनित् ज्ञान सार्थक स्थिति को प्राप्त कर पाता है। यही एक कारण है कि स्वप्न में भी काल्पनिक अनुभूतियों को इतने प्रबल रूप से भोग लेते हैं, जैसे वे यथार्थ रूप में इन्द्रियों के माध्यम से जागतिक स्तर पर घटित हुई भोगी जा रही हों। किसी भयानक स्वप्न से डरकर जागने वाला व्यक्ति देर तक कांपता रहता है, वस्तु के खाये बिना ही जगने पर भी उसके स्वाद के चटखारे लिया करते हैं, तो स्वप्न में मिली नोटों की गड्डी को संभालने के लिये हमारे हाथ जगने पर भी तकिये के नीचे तलाशते रह सकते हैं।

यह मन की सामान्य शक्ति है। इससे भी अधिक शक्ति मन में हुआ करती है अथवा यों कहा जा सकता है कि मन में इतनी संवाहकता है कि वह शक्ति के प्रबल रूप को आवेशित होने दे सकता है और उसकी इस क्षमता के कारण वह हमारे संक्षिप्त एवं क्षुद्र—ये अस्तित्व को विश्व की व्यापकता से जोड़ दिया करता है। अतीत एवं अनागत का ज्ञान करने का वह सशक्त माध्यम है, क्योंकि बुद्धि ज्ञान का स्तर है और ज्ञान में दिक् व काल नहीं रहा करते, ज्ञान का स्तर शाश्वत अतएव अविकृत है, इससे अतिरिक्त है। चेतना ज्ञान को भी अनुप्राणित किया करती है।

मन में भविष्य और भूतकाल को जानने की अद्‌भुत क्षमता है—इसका, शुद्ध रूप से—भौतिक विज्ञान के सिद्धांत से, प्रतिपादन किया जा सकता है। भूत क्या है और भविष्य क्या है—यह सब प्रकाश की महिमा है। विश्व की अनन्त दूरियों का साक्षी एवं दर्शक प्रकाश है आइंसटाईन के सिद्धांत के अनुसार प्रकाश की गति से तीव्र गति होने पर हम भविष्यत् में चले जाते हैं। अभी अमेरिका में जिस ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ, वह हमारे लिए भूतकाल की घटना हो चुकी तथा पाम्पियाई शहर का विनाश तो सुचिर इतिहास का दृश्य है, किन्तु वह दृश्य अभी भी भविष्य है। विश्व के अनन्त विस्तार में यदि हम हमारे ब्रह्माण्ड के निकटस्थ तारे में अभी पहुंच जायें, तो वहां से यह घटना अब दिखाई देगी। शक्तिशाली टेलिस्कोप से अभी दूरस्थ आकाश गंगा का जो स्वरूप दिखाई दिया है, वह हमारे लिये वर्तमान की घटना है, पर हमारी गणना के अनुसार वह दस लाख वर्ष पूर्व की बात हो चुकी, क्योंकि उसकी हमारे यहां से दूरी—दस लाख प्रकाश वर्ष है।

यह थी दूरी की बात। हमारा मन इससे अप्रभावित कैसे है—इस तथ्य का

विश्लेषण करें। भौतिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य के ज्ञान माध्यमों में प्रकाश सबसे तीव्र गति से चलने वाला माध्यम है, यह गति पदार्थ की भार शून्यता है। यद्यपि आइंस्टाईन ने इससे अधिक वेग की संभावना ही मानी है, पर इससे स्पष्ट इंकार भी परोक्ष रूप में कर दिया है। उसने कहा कि प्रकाश से अधिक गति होने पर हम अतीत में चले जायेंगे।

आइंस्टाइन के इस सिद्धांत के अनुसार हम भी यह मानते हैं कि प्रकाश—सूर्य काल का कर्ता है, पर जहां गति का प्रश्न आता है, हम प्रकाश से तीव्र गति के लिये 'मनोवेग' शब्द का प्रयोग करते हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रों में वेग के लिये वायुवेग और मनोवेग ही मापक रहे हैं, प्रकाशवेग नहीं, क्योंकि स्थूल पदार्थ पवनवेग से अधिक गति प्राप्त नहीं कर सकते इससे अधिक वेग फिर काल्पनिक ही रहा करता है।

भौतिक शास्त्र के सिद्धांत के अनुसार प्रकाश से अधिक गति प्राप्त करने के लिये पदार्थ का भारशून्य होना आवश्यक है और हमारा मन नैसर्गिक रूप से भारशून्य है, इसलिये अकल्पित गति का आधार वह बन सकता है तथा सचेतन होने के कारण उसकी गति हमारे लिये सार्थक भी रहा करती है। विचार मात्र से हम सूर्य बिम्ब का दर्शन कर सकते हैं जिसका प्रकाश आने में आठ मिनट लगते हैं, ऐसे ही यदि हमने किसी अत्यंत दूरस्थ तारे को देखा है—भले ही यह दर्शन किसी टेलिस्कोप से ही किया गया हो--जिसकी दूरी लाखों प्रकाश वर्ष है, तो उस पर हम विचारमात्र में पहुंच जाते हैं, यह मन की अकल्पित शक्ति एवं गति है।

मन की इस भौतिक शास्त्रीय विशेषता के ही कारण यह भूत एवं भविष्य का दृष्टा बनता है, क्योंकि एक ही काल के वर्तमान, भूत एवं भविष्यत् ये तीन रूप प्रकाश के कारण विभाजित होते हैं और प्रकाश से ऋणात्मक व धनात्मक गति हो भूत एवं भविष्य कहलाते हैं।

हमारे पूर्वज, मन की इस शक्ति से परिचित थे। ऋग्वेद की चार ऋचाओं में इनका विश्लेषण किया गया है। ये ऋचायें स्वप्न साधना के लिये आगे लिखी जायेंगी। उनमें मन की क्षमता का स्वप्न उल्लेख है। पहली ऋचा में कहा गया है--जो जागने पर दूर चला जाता है और सोने पर सिमट आता है, जो प्रकाश का भी प्रकाश है और प्रकाश से भी दूर चला जाता है वह मेरा मन शुभ संकल्प करने वाला हो—इस ऋचा में मन की गति का विवेचन करते हुए उसे प्रकाश का भी प्रकाश और प्रकाश से तीव्र चलने वाला बताया गया है। मन की गति को और अधिक स्पष्ट करते हुए अगली ऋचा में कहा गया है—जिस मन से यह सब हुआ, जो भूत और भविष्य का

परिग्रहिता है, जो मरणहीन है वह मेरा मन पवित्र संकल्प करने वाला हो यहां मन की सीमा में विस्तारित काल के भूत एवं भविष्यत् खण्ड को मन की शक्ति की परिसीमा में ही माना गया है। स्पष्ट है, मन में प्रकाश से अधिक वेग है, इसलिये उसके माध्यम से व्यतीत और भावी को अनुभव का विषय बनाया जा सकता है। जो लोग त्रिकाल दर्शन की योग्यता रखते हैं, वे मन के ही माध्यम से समय के विस्तार में झांकते हैं।

मन की इस गति और शक्ति के एक पक्ष से हम परिचित हो गये क्योंकि स्वप्नद्रष्टा यही रहता है। अब यह देखें कि स्वप्न क्यों आते हैं ? आयुर्वेद एवं योग शास्त्र के अनुसार हमें नींद इसलिये आती है कि हमारा मन सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। वही सुषुम्ना जिसे अंग्रेजी में स्पाइनल कॉड कहते हैं किन्तु सुषुम्ना और स्पाइनल के पीछे छुपे दर्शन में बहुत अन्तर है—जड़ और चेतन का मौलिक भेद है।

जब कभी मन बाहरी तनाव से या दबाव से ग्रस्त होता है, तो उसकी स्वाभाविक क्रिया में अन्तर आ जाता है। ऐसी स्थिति में निद्रा की सघनता बाधित होती है और मन विविध प्रकार के दृश्यों की रचना करने में लीन हो जाता है। प्राकृतिक आवेग भूख-प्यास, जैसे प्रभाव से ग्रस्त होकर यह जो कुछ देखता है वह फल निर्णय की दृष्टि से अर्थहीन होता है, चिन्ता या आसक्तिवश यह जो कल्पना विस्तार करता है, वह भी निरर्थक होता है। हमारे शरीर में कार्यरत वात, पित्त, कफ के असंतुलन से भी स्वप्न आते हैं, इनमें वात दोष की असन्तुलित अवस्था के कारण आने वाले स्वप्नों में व्यक्ति हवा में उड़ता है, पहाड़ों पर चढ़ता है, ऊंचाई से कूदता है, पित्त विकार की स्थिति में आग जलते हुए देखता है रक्त और पीले रंग की वस्तुएं देखा करता है, कफ की अप्राकृतिक स्थिति से व्यक्ति पानी में तैरता है, जलाशयों और बगीचों में भ्रमण करता है। इसी प्रकार के स्वप्न देखता है। एक बात और भी होती है कि हमारा हाथ हमारे हृदय पर चला जाता है, तो उससे निकलने वाली घर्षण विद्युत की तरंगों से हृदय की क्रियाविधि में बाधा पड़ती है और वह अस्वाभाविक हो उठता है। इससे हमें भयावने स्वप्न आते हैं। किसी के प्रति अतिशय प्रेम, घृणा या अन्य प्रकार की आसक्ति के कारण भी हमें स्वप्न आया करते हैं और ये सारे स्वप्न हमारे लिये व्यर्थ होते हैं। एक जंजालमात्र हैं, जो मन की अस्वस्थता के कारण केवल कल्पना का विलासमात्र होते हैं, इनको लेकर परेशान होने की अथवा इनका फल पूछने के लिए किसी ज्योतिषी का समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

कभी-कभी डरावने स्वप्न निरंतर आते रहने से व्यक्ति नींद का आनन्द नहीं ले पाता। यद्यपि ऐसे स्वप्नों से कुछ होता जाता नहीं। फिर भी इनसे निंद्रा बाधित होती है। मेरे पुत्र पुनीत जिसकी अवस्था मात्र ग्यारह वर्ष है वह भी इन व्यर्थ के एवं भयावने स्वप्नों से परेशान है। अनेक बार उससे कहा हृदय पर हाथ रखकर मत सोया कर किन्तु यह उसकी आदत हो गई है। वैसे दुःखस्वप्न नाशन के लिये यंत्र भी बनाया जाता है जो भोजपत्र में लिखकर गले में बांध लेने से लाभ करता है जिसकी विधि यह है कि चार-चार खानों से सोलह कोष्ठक बनाकर (जैसे अंकों से बनाये जाने वाले यंत्रों में दिखाये गये हैं) ऊपर की पंक्ति में बायें से दायें गं, छं, जं, चं लिखे, दूसरी पंक्ति में इसी चाल से छं, नं, जं, ठ, लिखे तीसरी पंक्ति में इसे बायें से दायें चलते हुए टं, जं, ठं, चं और चौथी पंक्ति में इसी क्रम से नं, छं, जं, टं लिखे। अष्ट गंध से भोजपत्र पर लिखकर गूगल की धूप देकर गले में बांधने से बुरे स्वप्न नहीं आते।

अनेक बार व्यक्ति अपने किसी जन्मान्तर के प्रसंगों को बार-बार देखा करता है। होता यह है कि यदि स्मरणीय घटनायें और दृश्य सुषुम्ना में मुद्रित हो जाते हैं और मन उस स्मृति गुहाओं में सुषुम्ना के माध्यम से प्रवेश कर जाता है। ढूंढ़न पर ऐसी अनेक घटनायें मिल जायेंगी जिनमें व्यक्ति उन स्थानों पर जाता बाद में है और स्वप्न में पहले देख लेता है। कौन कहे—वह उन स्थानों को कितने पहले किस जन्म में, किस रूप में देख चुका होता है। अन्यथा यह निश्चित बात है कि मन चाहे कितना ही कल्पना करने में निपुण हो, उसका रचना संसार सीमित है, वह ज्ञान से शासित है।

स्वप्न क्यों आते हैं और कैसे आते हैं—यह बात स्पष्ट हो चुकी। अब उन भारतीय विधियों पर विचार करें जिनके जरिये मन को एक निश्चित दिशा में प्रवृत्त किया जाता है और भविष्यत का संकेत ग्रहण करने के लिऐ प्रेरित किया जाता है।

स्वप्न के अधिष्ठाता अनेक देव हैं और उनके मंत्र जप करने से स्वप्न आते हैं पर भगवान शिव को स्वप्नाधिपति कहा जाता है इसलिये सर्वप्रथम शिव के मंत्रों का प्रयोग—

"ओम् यज्जाग्रतो दूर मुदेति देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरं—
ज्योतिषां ज्योतिरेक तन्पे मनः शिव संकल्पमस्तु"।
येनेदं भूतम् भवनम् भविष्यत्परीगृहीममृतेन—सर्वम्, येन स्तायते स्पतहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

सुषारविरश्वानिव यत्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव,
निष्ठं यदजिरं यविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।
यतप्रज्ञानन मुत चेती घृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतंरमृतप्रजासु।
मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते—तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

प्रदोष के समय भगवान शिव की पूजा करके इन ऋचाओं का जप करें, संभव हो तो शिव की मूर्ति को दाहिने लेकर सो जायें। दाहिने लेने का मतलब शिव मूर्ति की अपनी दाहिनी करवट से है।

अथवा—

भगवन् देवदेवश शूलभृत वृषवाहन।
दृष्टानिष्टे समाचदन स्वप्ने सुप्तस्य यत्फलम्।।

शिव की पूजा कर इस मंत्र की पांच मालायें जपें और सो जायें।

अथवा—

"ओम् हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा"
इस मंत्र की ग्यारह माला जपे।

अथवा—

"नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिंगलाय महात्मने,
स्वप्ने कथय मे नित्यं सर्वकार्य मशेषतः
क्रियसिद्धि विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।"

रात्रि को सोने के बाद जब कभी नींद खुले, उस समय हाथ पैर धोकर अपने मस्तक में भगवान् शिव का निवास समझकर उनकी अर्चना मानसिक रूप से करके इस मंत्र को जपता हुआ सो जाए।

वैसे भगवान् शिव वैदिक एवं तांत्रिक देवता हैं दोनों ही उनको समान रूप से पूजते हैं, किन्तु जो लोग वैष्णव हैं, उनके लिये स्वप्न साधना का विष्णु मंत्र है—

"ओम् ह्रीं सकललोकाय विष्णवे प्रभाविष्णवे विश्वे विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः

इस मंत्र का जप करें—

विशेष—इन सभी प्रयोगों में व्यक्ति को हल्का भोजन और पवित्र भोजन करना चाहिए, कुशा के आसन पर सोना चाहिये। विष्णु का मंत्र तुलसी की माला से और शिव का मंत्र चन्दन या रुद्राक्ष से जपना चाहिए। शिव मन्दिर या विष्णुमन्दिर में सो पाना संभव नहीं हो तो घर पर ही ब्रह्मचर्य पूर्वक रहते हुए धरती

पर शयन और एक समय भोजन करना चाहिए।

इस प्रकार के प्रयोगों से जो स्वप्न आते हैं, वे प्रतीकात्मक एवं संकेत रूप में होते हैं। उनके आने पर व्यक्ति को चाहिए कि वह सोये नहीं। सो जाने से स्वप्न का पल क्षीण हो जाता है। अनेक बार स्वप्न में स्पष्ट निर्देश भी मिलता है, साधक ऐसे संकेतों को उठकर लिख ले अन्यथा लाख प्रयत्न करने पर भी ये निर्देश याद नहीं रहते।

स्वप्न के लिये सामान्यताः यह व्यवस्था है कि बुरा स्वप्न देखकर सो जाए और शुभ स्वप्न देखकर जागता रहे। प्रथम प्रहर में देखे स्वप्न का वर्ष भर में, दूसरे प्रहर का छः माह में, तीसरे प्रहर में देखे का तीन माह में और चौथे प्रहर में देखे का एक माह में फल मिल जाता है।

स्वप्नों का फल

शुभ—सिद्ध पुरुषों का, अपने गुरु की, देवता की, प्रसन्न मुख सुन्दर कुमारिका, गंगानदी, शिवलिंग, ईश्वर, बालक, छात्र, दीपक, महल, कमल, नदी, हाथी, बैल, समुद्र, फलवात् वृक्ष, पर्वत, जलती हुई अग्नि, कच्चा मांस, मदिरा, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, रत्न, और रत्न जटित गहने, सिंहासन, विमान, ध्वजा, बाजे, अभिषेक, सफेद चन्दन, नये वस्त्र, शालीधान, कुंकुम, शहद, राजा, अलंकृत सुन्दर स्त्रियां, नये बर्तन, दूध, खीर, घोड़ा, फल, पका हुआ अन्न, दही, बालक, विलासी पुरुष, मोर, नीलकंठ, नेवला, हरिण, पुष्प, सुन्दर मधुर वचन, भरा घड़ा, दर्पण, मछली, भोजन, बिना रुद्र का शिव, भारद्वाज राजा, वेदमंत्रों का पाठ, गाना, चाबुक, मंगल गीत, अंकुश—इन वस्तुओं को देखना शुभ माना जाता है, अर्थात् मंत्र प्रयोग के फलस्वरूप ये स्वप्न आयें तो यह जानना चाहिए कि स्वप्न प्रयोग में सफलता मिलने की सूचना है।

ये ही स्वप्न यदि रोगग्रस्त को आयें, तो यह मानना चाहिए कि वह स्वस्थ हो जाएगा और सामान्य स्थिति में आयें तो सुख मिलेगा—यह जानना चाहिये।

यदि प्रयोग किसी कामनावश किया जा रहा है और उसमें सिद्धि या असिद्धि का ज्ञान करने के लिये स्वप्न साधना की जाती है और स्वप्न में सुरूपा स्त्री, मदालसा, नदी, समुद्र, ब्राह्मण, सफेद कपड़ा, सूर्य का उदय, सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण, ऊंची अट्टालिकायें, भव्य भवन, हाथी-घोड़े-बैल और पर्वत पर चढ़ना, दही चावल खाना, पका मांस भक्षण करना, बिष्ठा का लेपन, रक्त से स्नान करना, मदिरा पान करना, पान खाना, चन्द्रमा की शीतल चांदनी देखना तो ये स्वप्न प्रयोग की सफलता के सूचक हैं।

सामान्यतया—काले रंग की स्त्री, काले वस्त्र व काला अंगराग लगाकर यदि किसी रोगी व्यक्ति का आलिंगन करती है तो यह रात्रि उसके लिये अन्तिम रहा करती है। इसी तरह यदि लाल रंग की स्त्री किसी का आलिंगन करे तो बीमारी, गुलाबी रंग की हो तो दुःख, नीले रंग की रहे तो कलह अथवा हत्या, पीली हो तो राजदंड, सफेद वस्त्र पहने स्वच्छ वस्त्रवती स्त्री आलिंगन करे तो उसे यश और

धन की प्राप्ति होती है। ऊपर पीले एवं गुलाबी रंग की स्त्रियों के लिये जो उल्लेख हुआ है उसमें सोने के रंग के समान हो तो वह शुभ फल देने वाली होती है। हल्दी के समान होने पर तथा मुखमण्डल पर उदासी अथवा क्रूरता रहने पर अशुभ फल दिया करती है, यही स्थिति गुलाबी रंग की होती है।

स्वप्न में—भोजन, पान, शरीर (स्वयं का) सवार, घर में आग लगती हुई देखे तो उसको धन प्राप्ति होती है। सफेद सर्प दाहिने हाथ में काटे, तो धन प्राप्ति होती है। जिसको काटे वह रोगी हो तो स्वस्थ हो जाता है।

स्वप्न में पाशबद्ध होने पर अथवा पाशबंधन से मुक्त होता है तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। दूध पीने से धन व्यय होता है।

ब्राह्मण, मदिरा और रक्तपान करता हुआ (प्रयोग करता ब्राह्मण अथवा विद्यार्थी हो और वह स्वप्न में मदिरा रक्तपान करता हुआ) स्वयं को देखे तो विद्या प्राप्त करता है तथा धन लाभ करता है। पान देखने पर प्रेम में सफलता और गेहूं देखने पर धन लाभ होता है। सरसों पाने पर लाभ, दही मिलने पर अर्थलाभ घी मिलने पर विवाद में विजय होती है।

स्वप्न में घी पीने वाला आर्थिक संकट, दही खाने वाला विजय और शिवलिंग का पूजन देखने वाला सफलता प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति स्वप्न में कंपन रहित कमल में बैठकर तालाब के बीच घी और खीर खाता है उसे राज्य में बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त होता है। देवता, ब्रह्मचारी, गायें, पितर, राजा और ब्राह्मण स्वप्न में जो कुछ कहते हैं, वह सत्य होता है।

जो व्यक्ति स्वप्न में ग्राम अथवा नगर से अनाज वेष्टित करता है वह ग्राम अथवा नगर का प्रधान होता है।

चन्द्र और सूर्य का ग्रहण तारों में घूमना, धरती और समुद्र को ग्रास होना अथवा शत्रु का वध देखने से मुकद्दमे और जुए में विजय होती है।

घोड़ी, भैंस, शेरनी, गाय, हथिनी आदि का दूध निकालने वाले गुरु और ब्राह्मण को प्रसन्न रूप में देखने से शुभ फल प्राप्त होता है।

स्वप्न में स्नान, राज्याभिषेक और अपने सिर को कटता हुआ देखने पर गंभीर रोग या मृत्यु की संभावना रहती है।

तीर्थ के जल में तैरना, विषम स्थानों को लांघना, दूसरे की स्त्री का आलिंगन करना, रोना, विष्ठा का लेप करना, सफेद कमल, बकुल और चमेली के फूलों का देखना स्वप्न में हो तो जुए, मुकद्दमे अथवा प्रतियोगी परीक्षा में विजय की सूचना है।

पाश से बंधना, पशु-मनुष्य हरिण की प्राप्ति अथवा इनको दबोचना मोर—सफेद

वस्त्र का लाभ, पुष्प और चन्दन धारण करना, चांदी अथवा सोने के जड़ाऊ पात्र में भोजन करना स्वप्न में दिखने पर व्यक्ति अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करता है, जिनकी किसी काम के प्रति आकांक्षा नहीं है उनको धन लाभ होता है।

बांझ स्त्री, चमड़ा, तुष, अग्नि, अंगार, ईंधन, नमक, विष्ठा, नपुंसक, तेल, जटाधारी, चर्बी, दमा, रोगी, मनुष्य, संन्यासी, नग्न, भूखा मुण्डितशिर, रक्त की मालिश करने वाला, बाण से घायल, रूई, लड़ती हुई बिल्ली, गर्भवती, रजस्वला, गुड़, छाछ (मट्ठा) गेरूआ, कीचड़, घर में उग रहे एरण्ड का वृक्ष, बिजली गिरना, मदिरा, दुष्ट पशु (ऊंट, गदहा, बकरी, बिल्ली) गन्दगी, अंधा बहरा, कुबड़ा गंजा, लूला, कै, खाली घड़ा, धोबी, गन्दे वस्त्र पहने हुए कुरूप व्यक्ति स्वप्न में दिखे तो कार्य सिद्ध नहीं होता। ये चीजें रोगी को स्वप्न में दिखाई दें तो अत्यंत अशुभ रहती हैं।

अशोक, कनेर, फूले हुए पलाश को स्वप्न में देखने पर व्यक्ति दुःख प्राप्त करता है।

व्यक्ति स्वप्न में अपने आपको किसी अन्य पशु-पक्षी आदि के रूप में रूपान्तरित, दक्षिण दिशा में गमन करता हुआ, कीचड़ में लिप जाए और डूब जाना देखता है, उसके पुत्र और पत्नी की मृत्यु होती है (बाल्मिकी ने रामायण के सुन्दर कांड में राक्षसियों को रावण के लिये स्वप्न में ऐसी ही दशा दिखाई है)।

गाय, हाथी ब्राह्मण और भगवान कृष्ण का दिखना शुभप्रद रहा करता है।

लाल रंग का लाल फूलों की माला पहने लाल वस्त्र धारण किये हुए अथवा काले रंग के कपड़े, माला आदि धारण करके गदहे अथवा ऊंट अथवा भैंसे पर सवार होकर दक्षिण दिशा में गमन करता है, उसका जीवन तीन माह से अधिक नहीं होता।

स्वप्न में जो व्यक्ति अपने घर या किसी मठ के द्वारों को बन्द देखता है और उठ नहीं पाता, उसका जीवन एक मास से अधिक नहीं होता।

जो टट्टी अथवा पेशाब या कै करता है, सन्तान उत्पन्न करता है तथा वीर्यपात करता है (यह बात इस युग में लागू नहीं होती पर प्राचीन ग्रंथकार कहते हैं, यहां इस घटना को इसलिये महत्वपूर्ण माना गया है कि स्वप्न साधना के लिये किये जाने वाले प्रयोग तथा तदनुसार आचरण करने पर वीर्यपात नहीं होना चाहिए) वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीता।

जो व्यक्ति स्वप्न में काले-कलूटे अस्त्रधारी व्यक्तियों द्वारा बांधा जाता है अथवा पत्थरों से मारा जाता है, उसकी मृत्यु निकट आ चुकी है।

मुण्डित मस्तक होकर जो व्यक्ति ऊंट, गधे या भैंसे पर सवार दक्षिण दिशा में गमन करता है, उसकी मृत्यु निश्चित है।

स्वप्न में महलों-मकानों का गिरना, चन्द्र-सूर्य पहाड़ और वृक्षों का गिरना देखने पर व्यक्ति अपने पद से च्युत होता है।

यदि रोगी व्यक्ति नदी तैरकर पार करता है और तट पर पहुंच जाता है, दूसरे के वस्त्र पहनता है, तो स्वस्थ हो जाता है और स्वस्थ व्यक्ति ऐसा स्वप्न देखकर अशुभ फल प्राप्त करता है।

पुरुषमृग, कमेडी, सूअरी, वेश्या, छछून्दर, छिपकली, कोयल, ये बांयी तरफ कोयल, गीदड़ (मादा) नीलकंठ, कृष्ण मृग, रूख चीतल, कौवा, रीछ, कुत्ते दाहिनी तरफ दिखें, तो रोगी स्वस्थ होता है तथा साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।

ये स्वप्न साधक के लिये स्वप्न के माध्यम से शुभाशुभ जानने के लिये किये गये प्रयोगों के परिणाम स्वरूप होता है। अनुभव की बात यह है कि व्यक्ति जिस प्रकार का काम्यकर्म करने के लिये अनुष्ठान करना चाहता है उसे उसी प्रकार के प्रतीकात्मक स्वप्न आया करते हैं। मैंने जीवन में प्रथम बार जो काम्य प्रयोग किया था वह परीक्षा में पास होने के निमित्त था और भगवान हनुमान की कृपा से बहुत जल्द–नियत समय से एक तिहाई दिनों में ही मुझे स्वप्न हो गया था और वह स्वप्न विद्यालाभ कल देने वाला था। स्वप्न ने सफल्ता सूचना पहले दे दी। परिणाम ने उसकी पुष्टि मात्र की।

वैसे भी ये स्वप्न यदि आते हैं तो इनका फल मिलता ही है पर शर्त यह है कि ये मन की प्राकृत अवस्था में आने चाहिए। इनके माध्यम से हमें भविष्य का पूर्वाभास होता है। आज भी अनेक स्वप्न ऐसे हैं जिनको मैंने कभी विफल होते नहीं देखा।

प्रयोग विशेष के अंगरूप में किये गये मंत्र के परिणाम स्वरूप यदि ये स्वप्न शुभफल की सूचना देते हैं तो प्रयोग करना चाहिए अशुभ स्वप्न आने पर नहीं करना चाहिए।

उपसंहार—यंत्र शास्त्र का मूल अथर्ववेद में ढूंढने की बात विद्वानों ने कही है तदपि यह तंत्र शास्त्र का ही अंक और तंत्र का अंग होने से यह देवाधिदेव शंकर द्वारा उपदिष्ट आगम शास्त्र है। आगम का अर्थ है आना किन्तु यहां वर्णार्थ के रूप में यह कहा गया है कि आ अर्थात् आया–आगतं–अर्थात्–गया–गतं–म अर्थात् माना–मतं–यह इसका वर्णार्थ हुआ जिसकी संगति हुई शिव के मुख से आया और पार्वती के मुख (श्रवण) में गया तथा वासुदेव ने इससे सम्मति प्रकट की इस तरह आगम शब्द ने अपना रहस्य प्रकट किया।

वेद अपने में स्वतंत्र सत्ता है। उससे व्यक्ति ज्ञान की उच्चतम भूमिका में प्रवेश किया करता है, किन्तु वह अपनी शैली और चरित्र में स्थिर है, उसमें व्यक्ति की

विवशता को अवकाश नहीं है, वह युग के अनुसार रूपान्तरित नहीं होता वह प्रभु की आज्ञा की तरह निरपेक्ष और कठोर है। वस्तुतः वेद श्रेयस् साधना है और व्यक्ति को वेद के वचनानुसार अपने को ढालना पड़ता है।

वेद की यह स्थिरता पीढ़ियों के लिये दुर्बोध और असह बनने लगी यह उदारस्वेता ऋषियों ने हम पर कृपा करके भागीरथी का अवतारण किया। वेद हिमगिरी की तरह अचल है, तो पुराण एवं महीधर पंतित पावनीः ताप हारिणी गंगावत् है। मानव जाति की वैदिक, दैहिक और मानसिक क्षमता में प्रभावित ह्रास को देखकर ही हिमाचल के द्रवित रूप को हमारे नगरों तक पहुंचाने का प्रयास किया हो ?

चिन्तन की ऊंचाइयां हमें स्वार्थों की ऊबड़-खाबड़ धरती से ऊपर खेंचती हैं और वहां कामनाओं की आंधी नहीं पहुंच पाती, इसलिये दर्शन और मुक्ति हमारे यहां की उदात्त उपलब्धियां हैं और वेद की चेतना विश्वजनीन वरदान रही है जिसे भारत ने अवतरित अभिव्यक्त किया।

आगम, वेद से भिन्न है, पर वह लोक साधना के लिये समर्पित विद्या है, उसमें व्यक्ति चेतना प्रमुख है इसलिये वह मानवीय आकांक्षाओं को तीव्रता से अनुभव करता है और उसकी सहजता को स्वीकार भी करता है। मुक्ति का आकर्षण वहां बंधन का सार्वदिक परिचय देना है। सांसारिक आकर्षण हमें इसलिये सुहाते हैं कि उनकी संवेदना और संग्राहकता के धारे हमारे भीतर हैं और हम उन पर नियंत्रण नहीं कर पाते। कहने का तात्पर्य यह कि हम सांसारिक बंधनों में किंवां माया के पाश में इसलिये जकड़े हुए हैं कि हमारे में बंधने की योग्यता है। यदि हम पर्वत की तरह होते या आकाश की तरह मुक्त होते, बंधन न हमें सुहाता न हम बांधे ही जा सकते थे, पर हम बंधे हुए हैं, बंधन हमें सुहाते हैं क्योंकि बंधने लायक आधार हमारे में हैं।

यंत्र मुक्ति-साधना का मार्ग नहीं बताता वह सांसारिक लालसाओं की पूर्ति का साधन बताता है मनुष्य के सहज कष्टों का उपचार खोजता है फिर भी हम आगम को नितान्त भौतिक या बहिर्वादी नहीं कहते क्योंकि यंत्र-विधि अपने आप में प्रकृति के रहस्यों को अनावृत करने की पद्धति है। जिस तरह कोई व्यक्ति ऐकिक नियम के सवालों को करते-करते कालान्तर में उसके रहस्यों को जान जाता है उसी तरह यंत्र साधना करने वाला भी यंत्रों के स्थूल रूप को लिखते-लिखते उनके सूक्ष्म रहस्यों को समझ लेता है।

दूसरा तथ्य यह भी है कि हम इस माध्यम से कामनाओं के अम्बार में और उनकी पूर्ति के सुख में इतने सरोबार हो जाते हैं कि उससे हमें अरुचि होने लगती

है। जब हमारा अस्तित्व ही तिरोहित होने लगता है तो एक उत्कृष्ट आत्मभाव जागृत होने लगता है और उसकी जागृति विवेक का उदय बन जाती है और तृप्ति का वैराग्य जागता है और यह विरक्ति इनको स्थायी होती है कि इसमें फिर कोई विच्युक्ति होने की संभावना नहीं रहती।

सिद्धान्त और व्यवहारिक दृष्टि से भी जो वस्तु विकर्षण करती है वह आकर्षण भी करती है। तात्विक दृष्टि से आकर्षण और विकर्षण एक-सी क्रिया हैं। अन्तर उनके अभिमुख और पराङ्मुख होने की अवस्था का है इसलिये यंत्रों में अनेक यंत्र इसी प्रकार के भी बनाये जाते हैं, जो हमें संसार के मोह से मुक्त करते हैं।

माना, यह शास्त्र हमारे जीवन के द्वंद्व से मुक्ति–अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करके–पाने के लिये, हमारी विषमताओं को कम करने के लिये प्रतिबद्ध है। फिर भी इसका अनर्गल उपयोग नहीं किया जाए। यंत्र अपने आप में निर्दोष हैं। वे शान्ति-पुष्टि करने के लिये हैं अथवा मारण-तापन के लिये हैं। ये प्रकृति की कार्यविधि है और यह सम्पूर्ण रूप से हमारी पसन्द पर छोड़ दिया है कि हम किस प्रकार के प्रयोग करते हैं। सिद्ध यंत्र निर्दोष मशीन की तरह कार्य करते हैं, वे जर खरीद गुलाम की तरह सेवा करते हैं, ऐसी शक्ति यदि हम किसी पुण्य से या गुरु कृपा से प्राप्त कर लेते हैं, तो उसका उपयोग सोच-समझकर किया जाना चाहिए। यंत्र या मंत्र दोष भागी नहीं बनते दोष लगता है–उपयोक्ता को।

वास्तविकता यह कि हमारे में साहस और शक्ति नहीं है, धीरज और क्षमा नहीं है इसलिये हम इस प्रकार के अभौतिक साधनों को प्रयोग करना चाहते हैं। इस शास्त्र का उपयोग करने के पहले हमें उन तपस्वी ऋषियों का चरित्र समझ लेना चाहिए, जिन्होंने इस विद्या को और प्रकृति के रहस्यों को समझा था आविष्कार किया था और निर्लिप्त भाव से आने वाली पीढ़ियों के लिये रख दिया था। किसी भी ऋषि ने अपने लिये इस विद्या का प्रयोग नहीं किया। यथार्थ में ऋषि अपने सिद्धान्त के प्रति इतना निष्ठावान् था कि उसमें व्यक्तिगत नाम की कोई वस्तु थी ही नहीं। भगवान राम अपनी निष्ठा के कारण कालजयी हो गये, पर उन जैसी निष्ठा तो प्रत्येक ऋषि में रही है। स्वयं राम भी मानव देह की मर्यादा का पालन करते हुए ऋषि की संगति एवं स्पर्श पाकर ही मर्यादा पुरुष बने थे।

सिद्धान्त-समर्पित, ऋषि ब्रह्मास्त्र और इषीकास्त्र के ज्ञाता तथा आविष्कारकर्ता थे तथा आसुरों (आसुरी वृत्ति) से पीड़ित रहने पर भी इन शस्त्रों का प्रयोग नहीं करते थे, क्योंकि वे इस प्रकार के विघ्नों को संसार की प्रकृति मानते थे और इनको

सामान्यजन की तरह भोगते रहते थे किन्तु जहां व्यवस्था किंवा मर्यादा का प्रश्न आता था, वहां उनका ब्रह्म तेजस् प्रकट होता था और वे ऐसा आयोजन स्वयं न कर उस व्यक्ति से कराया करते थे, जिस पर यह दायित्व रहता था अर्थात् क्षत्रिय के यहां वे जिसके पुरोहित बना करते थे यज्ञ के पुरोधा और ब्रह्मा बनने में उनका गौरव अक्षत रहता था।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा जीवन एक प्रयोजन है, प्रकृति उद्देश्यहीन कोई कार्य नहीं करती, क्योंकि प्रकृति की अभिव्यक्ति और रूप क्रिया में होती है और प्रत्येक क्रिया परिणाम से अनिवार्य रूप में जुड़ी हुई है। हमारे जीवन की दरिद्रता, रोग और सन्ताप जैसी विपरीत स्थितियां हमारे जीवन का और जगत् का धर्म हैं, इनको सहन करना हमारे पूर्वजन्म के अर्जित भोग्य का क्षय करना है। इसे सहने में हम दुःखी और संकोचशील क्यों बने ? इस मान्यता के अनुसार यंत्र या मंत्र जैसे उपचार प्रधान शास्त्र का हमारे जीवन से कोई संबंध नहीं जुड़ता और ऐसी स्थिति में हमारे लिये उपयोग शून्य हो जाता है।

बात ऐसी नहीं है। शास्त्र भी ऐसा नहीं कहते और मैं भी ऐसा आग्रह नहीं कर रहा। इस प्रकार के आग्रह के पीछे एक ही भावना है कि किसी भी चीज या कुशलता का अनर्गल उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की सहनशीलता और क्षमता भिन्न स्तर की रहा करती है, इसलिये यंत्र या अन्य ऐसे ही उपचार का उपयोग करने की कोई निश्चित सीमा रेखा बता पाना संभव नहीं है तदपि इनका प्रयोग ऐसी अवस्था में ही करना चाहिए जो सामान्य स्तर से आगे की होती है। अपने अहं की तुष्टि के लिये, अपने आपको स्थापित करने के लिये अथवा किसी भी प्रकार की भौतिक लालसा के वशीभूत होकर इस पवित्र एवं शक्तिशाली विद्या का प्रयोग करना अनुचित है।

शक्ति सम्पन्न होकर भी मौन बने रहना, कष्ट सहते रहना अथवा अन्याय सहते रहना एक सामान्यजन के लिये संभव नहीं किन्तु यदि ऐसा होता है तो यह वीरता है, साधक की उत्कृष्ट पात्रता है और ये शास्त्र ऐसे व्यक्ति के लिये सुलभ-सत्य हैं। किसी आततायी को उत्पीड़न की छूट नहीं मिलनी चाहिए, पर साधना करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण पद प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्म तेजस् आक्रामक नहीं होता है, रक्षक है, सौम्य है। इनके साथ ही यह भी निश्चित है कि ब्रह्म तेज जब आक्रामक होने लगता है, तो फिर उस जैसा विनाशक कोई और हो भी नहीं पाता इसलिये अपने तेजस् और शक्ति का प्रयोग करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए।

हल्दी की गांठ मिलते ही पंसारी बन जाना सामान्य बात है और वाशिंगटन

की तरह नयी कुल्हाड़ी से उपवन के निर्दोष पादपों पर उसका प्रदर्शन करना भी सहज बात है, पर ऐसी चंचलता और दर्प व्यक्ति को साधक की गरिमा से च्युत करते हैं, उसकी पात्रता को मंद बनाते हैं। हमारी श्रेष्ठता इस व्यवहार से उजागर होगी कि हम जानकर भी चुप रहें, उत्तेजक स्थिति में भी उद्वेगशून्य बने रहें। ये शास्त्र और इनमें वर्णित प्रयोग शक्ति से साक्षात्कार की स्थितियां हैं, इनके सिद्ध होने से व्यक्ति असाधारण बना करता है, उसमें विवेक का उदय होता है, विवेक स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुखी अतएव विरक्त बनाता है। विवेकवान् होने के बाद यदि आपका निर्णय किसी प्रयोग को करने की आज्ञा देता है तो करने में कोई आपत्ति नहीं है। प्रयोग करने से पहले, उसके प्रभावों का मोहक मायाजाल फैलाना और अपनी असाधारणता पर मुग्ध हो रहना बुरी बात है, इससे सिद्धि नहीं मिलती और प्रयोग में निपुणता प्राप्त हो जाने पर उसका प्रदर्शन करने से व्यक्ति दोषी बनता है, पाप भाजन होता है।

यंत्र हो या मंत्र हो, पुस्तक का रूप ग्रहण करने के बाद सबके हाथों में पहुंच जाते हैं। यद्यपि मेरे जैसे व्यक्ति का इस संग्रह में कुछ भी नहीं है, प्रयोग के रूप में जो कुछ भी दिया गया है, वह परम्परागत किंवा आर्ष ग्रन्थों से उद्धृत है। मैं या कोई अन्य व्यक्ति इनमें परिवर्तन या अपनी तरफ से नया निर्माण नहीं कर सकते। ऐसा करने के लिये ऋषियों का निषेध है और उनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता, तदपि इन प्रयोगों के चयन में बहुत तरह की सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। उन प्रयोगों को मैंने छोड़ दिया है जो गुरुगम्य हैं और उनको भी नहीं लिया जिनके करने के लिये अधिक औपचारिकताएं निभानी पड़ती हैं। जो भी प्रयोग हैं, वे करने के लिये हैं और ये पुस्तकें उसके लिये आपकी सहायक हैं। फिर भी जैसा मेरा अनुभव रहा एवं शास्त्रों ने मर्यादा दी है उसके अनुसार प्रयोग करने से पहले प्राधिकृत हो लेना चाहिए। जैसे जब कभी हम चुनाव कराने जाते हैं तो मतदान केन्द्र के लिये हमें मतपत्र दिये जाते हैं। वे हमारे हस्ताक्षर से ही मतपेटी में डाले जायेंगे, पर उससे पहले हमें अधिकार पत्र दिया जाता है, जिसमें निर्वाचन अधिकारी हमें उन मतपत्रों का प्रयोग करने के लिये प्राधिकृत करता है, हम हमारे हस्ताक्षर करके मतदाता को उसका प्रयोग करने का अधिकार देंगे।

यह औपचारिकता एक व्यवस्था का अंग है। ठीक इसी तरह पुस्तक आपके पास रखने से आपको इसमें वर्णित प्रयोगों को करने का अधिकार है किन्तु उसे क्रियान्वित करने के पहले आप प्राधिकृत हो जाइये। केवल पुस्तक को देखकर कोई प्रयोग करने में कई तरह की आशंकायें रहती हैं। आपका प्रयोग असफल रह जाए

तो कोई बात नहीं किन्तु वह प्रतिकूल प्रभाव प्रकट कर दे, तो समस्या हो जाए। ऐसी ही दूसरी विसंगतियों से बचने के लिये आप अपने गुरु से अनुमति ले लीजिए, निगुरे व्यक्तियों को सिद्धि यदि मिलती है, तो संयोग की बात है अन्यथा व्यावहारिक दृष्टि से ऐसे लोग अज्ञात कुलशील रहते हैं, उनकी सम्प्रदाय, परम्परा नहीं होती इसलिये पैठ भी नहीं लगती।

गुरु न भी हो तो भी आप इस शास्त्र का किंवा साधना का उपयोग करने से वंचित रहें–यह आवश्यक नहीं। गुरु रहे तो अति उत्तम, पर न हो, तो उसकी औपचारिकता पूरी करने के लिये आप किसी कर्मनिष्ठ, सदाचारी, मर्मज्ञ व्यक्ति से अभीष्ट प्रयोग करने की आज्ञा ले लीजिए, वे कृपाकर आपको उस प्रयोग का रहस्य बतला दें तो आपका सौभाग्य।

यदि इस प्रकार के व्यक्ति भी आपकी पहुंच में न हों, तो आप भगवान् शंकर की मूर्ति के पास जाकर उक्त प्रयोग को भोजपत्र पर लिखकर शिव को गुरु रूप में अभिषिक्त करके प्रयोग ग्रहण कर लीजिए। जब कभी आप उस प्रयोग को करने बैठें गुरु को, गणपति को और प्रयोग के देवता को क्रमशः बायें-दायें और सामने प्रणाम करना न भूलें।

इस पुस्तक की उपयोगिता में कोई संदेह नहीं और प्रत्येक बात को इस रूप में लिखने की चेष्टा की है कि वह सरल रूप में समझ में आ जाए। भले ही इसके लिये अनावश्यक पुनरावृत्ति करनी पड़ी हो, इसके बावजूद भी ये लोग पूरी तरह केवल पुस्तक के आधार पर नहीं समझ पायेंगे, जो इस विषय से बिल्कुल पहली बार परिचित हो रहे हैं। जिन लोगों की समझ शुद्ध और सच्ची है वे अपने आप भी इनका उपयोग कर सकते हैं।

यंत्रों के लेखन में एक सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि इनकी चाल किस तरह रखी जाए ? विशेषतया जो अंकों से निर्मित यंत्र हैं उनमें। इसके लिये सामान्य नियम के रूप में याद रखा जाए कि जिन यंत्रों को भरने के लिए कोई विशेष क्रम नहीं दिया गया है, उनमें गति बायें से दायें अर्थात् उत्तर से दक्षिण रखी जाए। ज्योतिष में यह गति ही मान्य रहती है। किन्तु शास्त्रीय यंत्रों में पूजा करते समय क्लाक वाइज् रहती है। यंत्र भरते समय यंत्र से बड़ी संख्या भरने का क्रम सर्वत्र ग्राह्य नहीं होता, जहां कलम का उल्लेख नहीं किया गया है, वहां चमेली और अनार की कलम काम में ली जाती है। हां, जिन यंत्रों के देवता शिव हैं, उनमें अनार की ही प्रयोग की जाए और कलम का नाप साधक की उंगलियों से नौ अंगुल लिया जाए।

इस पुस्तक में या अन्यत्र भी ऐसे यंत्र मिल सकते हैं, जिनका योग चारों दिशाओं में एक समान नहीं होता अथवा जिनमें संख्याओं की भी कोई अनुक्रमिकता (सीक्वेंस) नहीं रहती। ऐसे यंत्रों को सर्वत्र अशुद्ध नहीं माना जाना चाहिए। यथार्थ में इस प्रकार के यंत्रों के पीछे एक सैद्धान्तिक आग्रह रहा है और वह यह कि कई मंत्र नियत संख्या के अक्षरों के ही रहा करते हैं, इस संख्या को नौ या सोलह कोष्ठकों में पूरा करने के लिये यति में परिवर्तन करना पड़ता है। जैसे गणपति एक देवता का स्वरूप है और मूलतः विशेष विधि से स्थापित बीजों से गणपति नाम का जो शक्तिबिम्ब बनता है वह मंत्र ही है। मंत्र के ही कारण है इसलिये प्रत्येक देवता मंत्र का स्वरूप होता है। गणपति के अनेक मंत्र हैं जिनमें कोई तीन अक्षर का, कोई पांच का, कोई छः का, नौ का ऐसे अनेक अक्षरों में अनेक रूप हैं और ये सब मिलकर गणपति के विविध रूपों का अनेक आयामों से दृष्टि-निर्मित रूप है।

उदाहरण के लिये बीसा यंत्र को लिखने की अनेक पद्धतियों में संख्याओं का कुल योग भिन्न हो जाता है। कोष्ठक पद्धति के अनुसार नौ कोष्ठकों में बीसा यंत्र लिखने के लिये साठ में पूर्ण होने वाली संख्यायें आवश्यक हैं जिनकी नौ इकाइयां (यूनिट) हों पर अष्टफल कमल में बनाया गया बीसा यंत्र केन्द्रक को जोड़ने पर नौ संख्यायें हो जाती हैं, फिर भी इनका नौ खानों में कुल योग पचास ही होता है। ऐसे ही दूसरी आकृतियों में तिरपन जैसा कुल योग आकर भी एक क्रम से बीस की संगति बैठ जाती है।

चाल परिवर्तन करने के पीछे कारण यह है कि जैसे एक ही परिणाम संख्यात्मक रूप में अनेक देवताओं के मंत्र हुआ करते हैं उसके अनुसार मंत्र और देवताओं का नाम, रूप एवं कार्य नियत हुआ करते हैं। उदाहरण के लिये नौ अक्षर का मंत्र देवी का भी है, गणपति का भी है, राम का भी है तथा दूसरे देवताओं का भी है, संख्या के रूप में ये सब एक हैं किन्तु मंत्र की संरचना में बीजों का परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है, यह परिवर्तन अंक यंत्रों में संख्या लिखने के क्रम में परिवर्तन करके किया जाता है। माना, चार अक्षरों से नाम बनते हैं गणपति, विनायक, गजानन अथवा दिवाकल, महाकाल, चतुर्मुख, जगदीश, कामदेव ये सब संख्या के स्तर पर एक हैं किन्तु अक्षरों एवं उनके संयोजनों के कारण नितान्त भिन्न हैं। इस भिन्नता को व्यक्त करने के लिये चाल बदलना ही संख्या की दृष्टि से व्यावहारिक एवं नियम संगत पद्धति है, इस परिवर्तन के कारण उनके रूप में परिवर्तन हो जाता है और वे ही रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा आदि षट्कर्मों की अधिष्ठातृ देवियों, शक्तिप्रतीकों के वाचक बन जाते हैं।

तंत्रशास्त्र में ग्रंथन, रोधन, योग, संपुट आदि विधियां हैं, इन यंत्रों में भी, भले ही वे बीजों के ही बनाये जा रहे हों, इस प्रकार की पद्धति का प्रयोग किया जाता रहा है। अष्टदल कमल वाले आकार में बीसा यंत्र लिखा गया है इसे वामावर्त विधि से अर्थात् एक, दो, तीन, चार लिखकर आवरोही चाल से लिखेंगे फिर नौ, आठ, सात, छः के क्रम से अवरोही गति से लिखेंगे। यह प्रक्रिया वैसी ही रहती है जैसे दो सर्पों के मुख से मुख और पूंछ से पूंछ जोड़कर गूंथने की रहा करती है। इस प्रकार के संयोजन के पीछे केवल गणितीय तथ्य ही नहीं वैज्ञानिक कारणवादिता भी रहा करती है, हम इसे समझ न पायें, यह दूसरी बात है, वैसे सामान्य साधक को इसकी आवश्यकता भी नहीं है।

मंत्र या तंत्र या यंत्र को लेकर अनेक प्रकार के सन्देह किये जाते हैं, इनका उपहास उड़ाया जाता है; इनके असत्य होने के संबंध में अनेक दलीलें दी जाती हैं और तो और साधना करने वाला भी शर्त के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश करता है तथा विफल होने पर इसे असत्य मान लेता है। अनेक लोग तो इस प्रकार की साधना से मिलने वाली सफलता को मात्र संयोग कहकर टाल देते हैं। जो लोग इस स्तर तक अपने अस्वीकार पर दृढ़ हैं उनसे कुछ नहीं कहना क्योंकि उनको कुछ समझाने में जितना समय और श्रम लगेगा, उतने समय में आस्थावान् अनेक जनों को लाभान्वित किया जा सकेगा।

इस विषय को विफलता से नहीं सफलता से नापा जाता है। एक ही प्रयोग दस जनों ने किया उनमें नौ विफल रहे और एक सफल रहा तो हम उस प्रयोग को ही सत्य मानेंगे क्योंकि यदि वह सत्य नहीं होता तो एक व्यक्ति को सिद्ध कैसे हुआ ? इस मान्यता में वैज्ञानिक पद्धति का अतिक्रमण है, वैज्ञानिक परीक्षणों में दस में नौ का सफल रहना आधार बनता है। इतने कम प्रतिशत को भी सार्थकता एवं महत्व देने के पीछे कारण है कि वैज्ञानिक परीक्षणों में जड़ पदार्थों को माध्यम बनाया जाता है और उनमें अपनी कोई क्रिया नहीं रहती, वहां दो और दो मन बराबर चार मन ही होंगे अथवा जड़ वस्तुओं के चेतन से सम्पर्क पर होने वाले प्रभावों का मूल्यांकन हो जायेगा जैसे औषधियों के परीक्षण करने पर होता है। इस प्रकार के परीक्षणों में एक आधार स्थिर होता है, उसकी जड़ता स्वयं में क्रियारहित होती है तथा उसके संपर्क किंवा उपयोग से जो जैव रासायनिक प्रभाव होता है वह भी हमारे स्थूल देह के स्तर पर ही होता है अतः वहां गणित की स्थिर पद्धति लागू हो जाती है।

मंत्र अथवा यंत्र के रूप में प्रयुक्त पद्धति में अपवाद को भी मूल्यांकन का

आधार बनाना एवं विश्वास का प्रतीक बनाना इस युग की विवशता है। जिस युग में ये प्रयोग लोक-व्यवहार में थे उस युग में इनका शत-प्रतिशत सफल रहना ही इनकी सत्यता का आधार माना जाता था, क्योंकि उस युग में हमारा लोकाचार सामाजिक-वातावरण, पर्यावरण और लोगों का चरित्र इस प्रकार की साधना तथा विषय के लिये उपयुक्त थे। जबकि आज स्थितियां बिल्कुल विपरीत हैं, लोकरुचि और सामाजिक व्यवहार नितान्त बहिर्मुखी हो गया। उसकी मानसिक शक्ति क्षीण हो चुकी है और शरीर विष बन गया है। उपेक्षणीय सी बात पर हम आवेश में आ जाते हैं, हंसने की बात पर हमारा सन्तुलन बिगड़ जाता है, थोड़े से लोभ में पड़कर हम हिंसक हो जाते हैं, बलात्कार और हत्या ही नहीं, कामवेग के सामने असहाय हो जाने वाले युग में शिवत्व की कमी रहा करती है, उसमें पशुत्व अथवा दानत्व का विकास होने लगता है।

हम आज के वातावरण को देखें और उस पर गंभीरता पूर्वक विचार करें तो लोमहर्षक तथ्य सामने आयेगा कि हमारे में धैर्य, उदारता, क्षमा आदि गुण लुप्त होते जा रहे हैं। अंग्रेजी औषधों, चाय-काफी-तम्बाखू आदि पदार्थों का निरंकुश उपयोग करते हुए हम हमारे रक्त की प्रकृति को विषमय बनाते रहते हैं। वैज्ञानिक संस्कृति के प्रसार से हमारा जल, वायु और धरती विकृत होती जा रही है। बाहर का यह दोष हमारे आभ्यन्तर को विकृत कर रहा है और आभ्यन्तर की सुकोमलता नष्ट होकर कठोर होती जा रही है।

ऐसे प्रतिप्रेक्ष्य में मंत्र साधना इतनी ही दुष्कर एवं आश्चर्यजनक है जितना मरुस्थल में कमल खिलना क्योंकि यह साधना नितान्त आध्यात्मिक है और उस आध्यात्मिकता के लिये देवत्व के गुण होना अनिवार्य है। साधक चूंकि चेतन होता है, उसकी पात्रता में विविध गुणों का विशिष्ट प्रकार का अनुपात रहा करता है, उसका इतिहास, वर्तमान, संस्कार, क्षमता आदि प्रत्येक आयाम भिन्न एवं स्वतंत्र प्रकार के होते हैं और आध्यात्मिक साधना के परिणाम इन सब आधारों के तारतम्य पर निर्भर करते हैं इसलिये विसंगतियों भरे वातावरण में इस प्रकार के प्रयोग अपवाद रूप में सफल होना भी प्रमाण मान लिया जाता है।

आध्यात्मिक साधना में दर्शनीय कुछ भी नहीं रहता। जिसने देह साधना की है, उसका बलिष्ठ शरीर भीड़ में पहचाना जा सकता है, जिसने अर्थ साधना की है उसे दूर से जान लिया जा सकता है, ऐसे ही जो लोग बहिर्मुखी किंवा जड़ विषयों की साधना करते हैं उन्हें सुविधापूर्वक बिना कुछ बताये जान लिया जाता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक साधना ऐसी होती है, जिसका बाहर से परिचय नहीं मिलता,

ऐसे व्यक्ति को भीड़ में नहीं पहचाना जा सकता। इसे पहचानने के लिये या तो व्यक्ति की मन की आंख खुली रहे अथवा उसका बौद्धिक स्तर उच्च रहे।

साधक में सबसे पहले जो गुण प्रकट होता है, वह होता है, आत्मविश्वास एवं आन्तरिक बल अर्थात् वह दैन्यविहीन होने लगता है, इसके साथ ही उसमें निर्भीकता आने लगती है। उसका मोह भाव सिमटकर उदात्तीकरण की स्थिति में आने लगता है। इतना कुछ होते-होते उसमें सिद्धियां प्रच्छन्न रूप में प्रकट होने लगती हैं, उसकी इच्छा में बल आ जाता है वह जिस समुदाय में रहता है वहां सम्मानित बन जाता है, उसकी आज्ञा का पालन होने लगता है। ये सब प्रभाव अष्टसिद्धियों के प्रादुर्भाव की पूर्वपीठिका हैं।

ये स्थितियां अथवा अन्य चमत्कार हमारी शक्ति के प्रकट एवं प्रबुद्ध होने का ही दूसरा नाम है। माना किसी विशेष पद्धति के आचरण, जप, नियम आदि का पालन करने के फलस्वरूप हमें शक्ति सम्पन्नता प्राप्त होती है तो भी यह शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती, हमारे में ही निहित रहती है। जो हमारे में निहित है वह असत्य कैसे हो सकती है। हम सब जानते हैं कि प्रधानमंत्री अथवा मुख्य न्यायाधीश आदमी ही होता है पर प्रत्येक व्यक्ति नहीं, इसलिये प्रधानमंत्री होना असत्य तो नहीं हुआ।

मंत्र अथवा यंत्र सत्य है अथवा नहीं इस विवाद को छोड़कर हम यह समझ लें कि आखिर ये मंत्र क्या हैं और इनकी यह साधना क्या है तो हमारे अधिकांश सन्देह और प्रश्न स्वतः समाहित हो जायेंगे। इस विवेचन को हम कुछ ज्ञात उदाहरणों से समझें—

'क' एक राज्य का मुख्यमंत्री है, 'ख' एक राज्य का पुलिस महानिरीक्षक है। ये दो या ऐसे ही अन्य राज्याधिकारी हमारे लिये चमत्कार के विषय हैं, क्योंकि हमारी अनेक विपदाओं का समाधान इनके एक संकेत पर हो सकता है। ये हमें सुखी जीवन न सही सुविधा का जीवन दे सकते हैं।

श्रीयुत किशन चन्द धनपति हैं, वे तो अनेक जनों की दरिद्रता चुटकी बजाकर दूर कर सकते हैं, कई बेरोजगार व्यक्तियों को अच्छे वेतन पर नौकरी दे सकते हैं।

राघव बहुत बलिष्ठ है। वह पचास व्यक्तियों को अकेला मार सकता है, दस लोग मिलकर जो काम नहीं कर सकते वह अकेला कर देता है।

इस प्रकार की अनेक स्थितियों और व्यक्तियों को हम देखते रहते हैं, हम जानते हैं कि धनपति की इच्छा को मूर्त्त रूप ग्रहण करने में कोई देर नहीं लगती

अथवा शासनाधिकारी राजबल के कारण स्थितियों को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

आखिर इन व्यक्तियों में यह सामर्थ्य आई कहां से और कैसे ? यह प्रश्न न करके हम इसके यथार्थ का विश्लेषण करें तो रहस्य अधिक स्पष्ट हो जायेगा। वास्तव में ये व्यक्ति इतने समर्थ नहीं हैं, शक्ति के इतने विस्तार और क्षमता को यह नाम दे दिया गया है। ग्राम पंचायत से लेकर देश के प्रधानमंत्री तक के पद यथार्थ रूप में शक्ति के ही केन्द्र हैं, जिनकी क्षमता को हमने विविध नाम दे दिए हैं और तदनुसार उनके क्षेत्र मर्यादित कर दिये गये हैं, जैसे बिजली विभाग वाले सब स्टेशन और ग्रिड स्टेशन लगाया करते हैं। एक छोटे गांव को बिजली देने वाला ट्रांसफार्मर ही उस गांव की रोशनी है। बिजली के अनेक विधि उपकरण हैं। हो सकता है, दस लोग मिलकर जो काम नहीं कर सकते वह अकेला कर देता है। जो व्यक्ति करोड़ों या अरबों रुपयों का मालिक होगा वह शक्ति के एक नियत रूप को प्राप्त कर लेगा तथा उस स्तर से संबद्ध एवं संभावित जो कार्य हैं वे सब वह कर सकेगा।

हमारे इतस्ततः हम जो ऊंच-नीच देखते हैं, वह सारी शक्ति के स्तर की ही है, इनमें किसी स्तर में शक्ति का राजस रूप प्रकट होता है, किसी में सात्विक और किसी में तामस। मूलतः ये शक्ति के ही नियत स्तर हैं किन्तु हमारे में से हरेक इनको प्राप्त नहीं कर सकता अन्यथा प्रधानमंत्री बनने का सीधा-सा सूत्र है, चुनाव लड़ा जाए, लोगों से वोट लेकर जीता जाए और जीते हुए लोगों को प्रभावित करके उनका नेतृत्व ग्रहण कर लिया जाए। सूत्र निर्दोष है और व्यवहार सिद्ध भी। प्रधानमंत्री के वैभव और शक्ति सम्पन्नता का वर्णन पढ़कर तथा उस पद को प्राप्त करने के इतने सरल सूत्र को देखकर हमारे मन में आकांक्षा जगना स्वाभाविक है किन्तु इस तथ्य को व्यावहारिक रूप देने में विशेष कठिनता आती है। यह सब जानते हैं क्योंकि उस पर शक्ति का केन्द्रीय रूप है जो सारे शासन को शक्ति प्रदान किया करता है।

मंत्र या यंत्र साधना में हम मंत्रों अथवा यंत्रों के जो फल पढ़ते हैं वे वास्तविकता में साधित शक्ति के स्वरूप हैं, प्रभाव हैं। एक ही शक्ति को हमने इतने रूपों में, देवताओं के प्रतीकों में व्यक्त किया है—यह शक्ति का माप है और उसका उपयोगितापन वर्गीकरण है। जैसे हमें साठ वाट बिजली चाहिए वह वोल्टेज बिजली की एक स्थिति है, शक्ति का एक नियत रूप है, इस बिजली से हम बिजली का बल्व जलाते हैं, पंखा चलाते हैं, रेडियो बजाते हैं। यह उसका उपयोग है।

मंत्रों में भी एक देवता के अनेक मंत्र हैं और उन मंत्रों में शब्दावली के अनुसार

देवता की सहज शक्तियों में से शक्ति को विशेष रूप एवं स्तर पर प्रकट करने के लिये यह परिवर्तन किया जाता है। साधना कर हम शक्ति के उस स्तर को प्रकट करना चाहते हैं। ये मंत्र भी शक्ति के स्तर ही हैं और जितना उत्कृष्ट स्तर होगा, उतनी ही साधना कठोर होगी। आचार संहिता नियंत्रित रहेगी। आर्थिक, राजनीतिक अथवा शारीरिक स्तर चूंकि आत्यंतिक रूप से बहिर्मुखी हैं, इसलिये इनकी साधना का रूप भी बहिर्मुखी रहता है किन्तु मंत्र अन्तर्मुखी है, अपने आभ्यन्तर से, अपनी निहित शक्ति को उद्दीप्त करना होता है इसलिये सब कुछ आभ्यन्तरिक रहता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा मन एवं शरीर इतना संवेदनशील हुआ रहता है, इसलिये सहज भाव से इसकी पात्रता इतनी विकास योग्य रहा करती है कि इसमें शक्ति का उत्कृष्टतम रूप और प्रबलतम स्तर प्रकट किया जा सकता है। यह हम ऊपर ही जान चुके हैं कि व्यावहारिक जगत् में विभिन्न नाम, पद, योग्यता आदि आधार शक्ति के ही माप हैं, इसलिये मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री जैसे स्तर हमारे में ही विद्यमान हैं, उन्हें प्रकट कर पाने की क्षमता और साधना के अभाव में ही हम संदेहग्रस्त हुआ करते हैं।

हमारे द्वारा प्रकाशित मिनी जोक्स सीरिज

ज्योतिष संबंधी पुस्तकें

भारतीय अंक ज्योतिष और अष्टक वर्ग (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

फलित दर्पण (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

जन्म पत्रिका दर्पण (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

ज्योतिष और काल निर्णय (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

रत्न ज्योतिष (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

हस्तरेखा विज्ञान और पंचांगुली साधना (डा॰ नारायण दत्त श्रीमाली)

हस्तरेखा और भविष्यज्ञान (कीरो)

अंग लक्षण और रेखायें (कीरो)

अंक ज्योतिष (कीरो)

बृहद अंक ज्योतिष (सत्यवीर शास्त्री)

बृहद हस्तरेखा विज्ञान (सत्यवीर शास्त्री)

लाल किताब और कष्ट निवारण (ओम प्रकाश कुमरावत)

सहज कुंडली दर्पण (ओम प्रकाश कुमरावत)

ग्रह निष्ट और उनके सहज शांति उपाय (ओम प्रकाश कुमरावत)

बेनहम हस्तरेखा विज्ञान

यन्त्र सिद्धि रहस्य

आकृतियां मनुष्य के जीवन को प्रभावित करती हैं। नाना प्रकार के सुन्दर चित्रों, दृश्यों, देवी-देवताओं की मूर्तियों के आकार, आकृतियां प्रभाव डालती हैं। इसी आधार पर यंत्र विद्या का आविष्कार किया गया है। यंत्रों द्वारा किस प्रकार अपना या दूसरों का जीवन प्रभावित कर सकते हैं विद्वान लेखक आचार्य गोविन्द शास्त्री ने इस पुस्तक में विशद विवरण दिया है।

यंत्र विद्या पर हमारा यह महत्वपूर्ण प्रकाशन लोकहित की दृष्टि से प्रस्तुत है।

एकमात्र वितरक

साहनी पब्लिकेशन्स

50/-

E-mail : sahni@sahnipublications.com
Website : www.sahnipublications.com